INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

BAHIN301
हिंदी गद्य-I

BA (HINDI)

5TH SEMESTER

Rajiv Gandhi University
www.ide.rgu.ac.in

हिंदी गद्य –I

बी.ए. (हिंदी)

(पंचम सत्र)

BAHIN-301

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Urvija Sharma , Dr. Saroj Kumari, Yatindranath Gaur, Dr. Pankaj Sharma

Vikas Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital, or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Infomation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च संस्थानों (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा .मी . हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमफिल व . एड का कोर्स भी चलाता है। .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .पी

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देशविदेश के -

प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र परीक्षाओं में भी NET | सफल हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक बाधाओं को दूर करने का - यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी - भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए (आईटीई) आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री -(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)** कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और .ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी। .ए के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है।. एम

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

'हिंदी गद्य – I'

Syllabi- BAHIN-301	Mapping in Book
इकाई 1: परिचय, हिंदी गद्य साहित्य की विकास यात्रा , उपन्यास ; उपन्यास का उद्भव एवं विकास ; उपन्यास का स्वरूप ; प्रमुख उपन्यासकार , नाटक ; नाटक का उद्भव एवं विकास ; प्रमुख नाटककार	**इकाई 1: हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास I –**
इकाई 2 : परिचय ; में राजनीतिक चेतना 'महाभोज'; में 'महाभोज' दलित चेतना	**इकाई 2: उपन्यास (मन्नू भंडारी : महाभोज)– I**
इकाई 3: परिचय ; भीष्म साहनी की नाट्य कला; भीष्म साहनी नाटककार के रूप में ; भीष्म साहनी की नाट्य कलागत विशिष्टताएं	**इकाई 3: नाटक भीष्म : कबिरा खड़ा बाजार में) साहनी-II**
इकाई 4: परिचय ; पुरस्कार जयशंकर प्रसाद :; व्यक्तित्व एवं कृतित्व ; पूस की रात मूलपाठ :; कथासार ; मुख्य अवतरणों की व्याख्या ; कहानी के तत्वों के आधार पर की समीक्षा 'पूस की रात की समीक्षा'; पूस की रात : प्रेमचंद; व्यक्तित्व एवं कृतित्व ; पूस की रात मूलपाठ :; कथासार ; मुख्य अवतरणों की व्याख्या ; कहानी के तत्वों के आधार पर की समीक्षा 'पूस की रात की समीक्षा'	**इकाई 4: कहानी –II**
इकाई 5: परिचय ; मित्रता आचार्य रामचंद्र शुक्ल : (निबंध); आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक परिचय :; मित्रता मूल पाठ :; मित्रता : निबंध सार; मित्रता समीक्षात्मक अवलोकन :; प्रथम भेंट-महादेवी वर्मा : (रेखाचित्र) अंतिम भेंट; प्रथम भेंटअंतिम - एक परिचय : भेंट; प्रथम भेंट मूल पाठ : अंतिम भेंट-; प्रथम भेंटअंतिम भेंट का सा-र ; प्रथम भेंट : अंतिम भेंट-समीक्षात्मक अवलोकन	**इकाई 5: विविध-विधाएँ –II**

विषय-सूची

परिचय

इकाई 1 : हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास – I

1.0 परिचय

1.1 हिंदी गद्य साहित्य की विकास यात्रा

1.2 उपन्यास

1.2.1 उपन्यास का उद्भव एवं विकास

1.2.2 उपन्यास का स्वरूप

1.2.3 प्रमुख उपन्यासकार

1.3 नाटक

1.3.1 नाटक का उद्भव एवं विकास

1.3.2 प्रमुख नाटककार

इकाई 2 : उपन्यास (महाभोज : मन्नू भंडारी) – I

2.0 परिचय

2.1 'महाभोज' में राजनीतिक चेतना

2.1 'महाभोज' में दलित चेतना

इकाई 3 : नाटक (कबिरा खड़ा बाजार में : भीष्म साहनी) – I

3.0 परिचय

3.1 भीष्म साहनी की नाट्य कला

3.1.1 भीष्म साहनी नाटककार के रूप में

3.1.2 भीष्म साहनी की नाट्य कलागत विशिष्टताएं

इकाई 4 : कहानी – I

4.0 परिचय

4.1 पुरस्कार : जयशंकर प्रसाद

4.1.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

4.1.2 पूस की रात : मूलपाठ

4.1.3 कथासार

4.1.4 मुख्य अवतरणों की व्याख्या

4.1.5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'पूस की रात की समीक्षा' की समीक्षा

4.2 पूस की रात : प्रेमचंद

4.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

4.2.2 पूस की रात : मूलपाठ

4.2.3 कथासार

4.2.4 मुख्य अवतरणों की व्याख्या

4.2.5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'पूस की रात की समीक्षा' की समीक्षा

इकाई 5 : विविध विधाएं – I

5.0 परिचय

5.1 मित्रता (निबंध) : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

5.1.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : एक परिचय

5.1.2 मित्रता : मूल पाठ

5.1.3 मित्रता : निबंध सार

5.1.4 मित्रता : समीक्षात्मक अवलोकन

5.2 प्रथम भेंट-अंतिम भेंट (रेखाचित्र) : महादेवी वर्मा

5.2.1 प्रथम भेंट-अंतिम भेंट : एक परिचय

5.2.2 प्रथम भेंट-अंतिम भेंट : मूल पाठ

5.2.3 प्रथम भेंट-अंतिम भेंट का सार

5.2.4 प्रथम भेंट-अंतिम भेंट : समीक्षात्मक अवलोकन

1.0 परिचय

आधुनिक काल में हिन्दी गद्य का विकास बौद्धिक, तर्क ज्ञान व चिंतन आदि स्तरों पर विकास के कारण हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक भारतेंदु ने हिन्दी साहित्य के सभी अंगों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। नाटक, कहानी, निबंध, संस्मरण, डायरी, रिपोर्ताज आदि विधाओं में गद्य का विकास उल्लेखनीय रूप से हुआ। आधुनिक काल से पूर्व गद्य का विकास बहुत कम हुआ था। भारतेंदु युग से लेकर शुक्लोत्तर युग में हिन्दी गद्य का जो बहुमुखी विकास दर्शित हुआ वह आज तक प्रभावी है।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य विभिन्न चार रूपों में मिलता है– राजस्थानी गद्य, मैथिली गद्य, ब्रजभाषा गद्य तथा खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य। हिन्दी गद्य का आरंभ भारतेंदु से पूर्व ही हो गया था।

फणीश्वरनाथ रेणु स्वातंत्र्योत्तर काल के सशक्त कथाकार हैं। इन्होंने हिन्दी में सही अर्थों में आंचलिक उपन्यास लिखे। *'मैला आंचल'* और *'परती परिकथा'* में ग्रामांचलों के

विशद चित्र देखने को मिलते हैं। *'दीर्घ तपा'*, *'कितने चौराहे'* और *'जुलूस'* बाद के उपन्यास हैं। हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही उपन्यासों की रचना होने लगी।

पांच शताब्दियों के अंतर्धान रहने वाले नाटकों को ही हम आधुनिक गद्य के प्रवर्तन में प्रमुख माध्यम के रूप में देखते हैं। पिछली संस्कृत साहित्य की संपदा अपार है किंतु उसकी उत्तराधिकारिणी हिन्दी में नाटकों की रचना बहुत बाद में हुआ।

एकांकी नाटकों का एक अन्य रूप है अर्थात एक अंक के नाटक ने वर्तमान समय में नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है। हिन्दी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखी गई वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थी।

कहानियों के आरंभ की परंपरा भी कोई कम पुरानी नहीं है। हिन्दी कहानी का विस्तार अत्यंत प्रभावशील रहा। विभिन्न कालक्रम एवं परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहा। कहानी को समय–समय पर विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा– कथा, आख्यान, गल्प आदि। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने *'सरस्वती'* नामक पत्रिका का संपादन किया था। फिर किशोरी लाल गोस्वामी की *'इंदुमती'* नामक कहानी छपी और इसके बाद बंग महिला की *'दुलाई वाली'* और फिर रामचंद्र शुक्ल की *'ग्यारह वर्ष का समय'* प्रकाशित हुई। उपेंद्रनाथ अश्क की कहानियों में प्रेमचंद की भांति सभी वर्गों के पात्र हैं किंतु अधिकांशतया मध्यमवर्गीय एवं निम्नवर्गीय पात्रों का यथार्थ चित्रण मिलता है। *'डाची'* उनकी प्रसिद्ध कहानी है।

गद्य लेखनी की एक अन्य विधा है उपन्यास। हिन्दी में सामाजिक उपन्यासों का आविर्भाव प्रेमचंद से हुआ। उन्होंने सेवासदन, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, गोदान जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। उससे पहले सन् 1877 में श्रद्धाराम ने *'भाग्यवती'* उपन्यास लिखा और उसके बाद सन् 1882 में लाला श्री निवासदास ने *'परीक्षा गुरु'*। *'परीक्षा गुरु'* में उपदेशात्मकता के साथ–साथ समस्त औपन्यासिक तत्वों का समन्वय है। 'परीक्षा गुरु' को ही हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है। प्रेमचंद का हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास की परंपरा में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

हिन्दी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु के बाद हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का दूसरा महत्वपूर्ण सोपान सन् 1901 से सन् 1920 तक माना जाता है। इस युग का लगभग संपूर्ण साहित्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का परिणाम है। डॉ. श्याम सुंदर दास इस युग के विचारात्मक निबंधकार हैं। श्यामसुंदर दास ने भाषा एवं साहित्य विषयक निबंध ही अधिक लिखे हैं। 'समाज और साहित्य', 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', 'हमारी भाषा', 'हिन्दी गद्य के आदि आचार्य' इनके प्रसिद्ध निबंध हैं। छायावादी कवियों में सर्वाधिक निबंध सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखे। इनके निबंधों में हृदय और बुद्धि पक्ष का सहज समन्वय है, हास्य व्यंग्य का मर्मस्पर्शी विधान है, कविसुलभ भावात्मकता एवं चित्रमयता है। भारतेंदु ने जिस निबंध कला का ढांचा खड़ा किया पं. बालकृष्ण भट्ट ने जिसे गतिमान बनाया और द्विवेदी जी ने पूर्ण संस्कार किया वही निबंध इस काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मार्मिक चिंतन के

अभिनव तत्वों के साथ विकसित हुए। आधुनिक युग के निबंध साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति युगीन जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट करने वाले हास्य व्यंगात्मक निबंधों की रही है लेकिन हिन्दी लेखन की इतनी समृद्ध परंपरा होने के बावजूद इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन कम हुआ है।

इस इकाई के अंतर्गत हिन्दी गद्य साहित्य के विकास, उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी और निबंध आदि गद्य विधाओं का अध्ययन किया गया है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिन्दी गद्य साहित्य की विकास यात्रा का अवलोकन कर पाएंगे;
- हिन्दी उपन्यास, नाटक और एकांकी के उद्भव और विकास का अध्ययन कर पाएंगे;
- हिन्दी गद्य साहित्य की कहानी और निबंध विधाओं के उद्भव व उनकी विभिन्नताओं का विवेचन कर पाएंगे।

1.2 हिन्दी गद्य साहित्य की विकास यात्रा

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य साहित्य इतनी न्यून मात्रा तथा अविकसित दशा में मिलता है कि वह प्रायः नगण्य–सा समझा जाता है। गद्य के विकास में देरी को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रत्येक भाषा के समान हिन्दी में भी पद्य का विकास पहले हुआ। संस्कृत तथा परवर्ती भाषाओं में पद्य का ही महत्व था, हिन्दी में भी इसी का अनुकरण किया गया, किंतु यह भ्रामक धारणा है। पद्य का विकास होने का कारण इसका भाव लालित्य माना जाता है; जबकि गद्य को शुष्क एवं नीरस माना जाता है।

वस्तुतः साहित्य में 'काव्य' संज्ञा का प्रयोग गद्य एवं पद्य दोनों के लिए ही किया गया। साथ ही गद्य को कवियों की कसौटी भी माना गया है यथा– 'गद्यं कविनामं निकषं वदन्ति'। इस प्रकार गद्य की उपादेयता और अधिक बढ़ जाती है।

यहां प्रश्न है कि संस्कृत की गद्य परंपरा परवर्ती भाषाओं में विकसित क्यों नहीं हो पाई, इसका उत्तर यह है कि जब किसी युग विशेष में जीवन का दृष्टिकोण बौद्धिकतापरक यथार्थवादी, वस्तुवादी एवं व्यावहारिक अधिक होता है, तो उसमें गद्य को अधिक प्रोत्साहन मिलता है; जबकि इसके विपरीत जीवन में भावुकता, तर्कशून्यता, आध्यात्मिकता एवं काल्पनिकता की प्रतिष्ठा होने पर उसमें अभिव्यक्ति पद्य का माध्यम बनती हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में मुद्रण के प्रचलन, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना धार्मिक एवं बौद्धिक आंदोलनों के उत्थान तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार के कारण जीवन में जैसे–जैसे बौद्धिकता, ज्ञान, तर्क एवं चिंतन की प्रतिष्ठा बढ़ी, वैसे–वैसे गद्य साहित्य का भी विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चात तो हिन्दी में गद्य साहित्य की इतनी उन्नति हुई कि इतिहासकारों ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य निम्न रूपों में मिलता है– (1) राजस्थानी गद्य (2) मैथिली गद्य (3) ब्रजभाषा गद्य तथा (4) खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य। इनका संक्षिप्त परिचय अग्रलिखित है–

1. **राजस्थानी गद्य** – राजस्थानी गद्य की प्राचीनतम रचना तेरहवीं शताब्दी की है, जिनमें 'आराधना', 'अतिचार' एवं 'बाल शिक्षा' उल्लेखनीय हैं। ये रचनाएं मुनिजिनविजय द्वारा 'प्राचीन गुजराती गद्य–संदर्भ' में संगृहीत हैं। इन रचनाओं को हिन्दी गद्य की प्रारंभिक अवस्था की सूचक कृतियों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। 14वीं शती में रचित अनेक राजस्थानी गद्य रचनाएं अमरचंद नाहटा के पास सुरक्षित हैं। इनमें 'धनपाल कथा' व तत्व विचार प्रमुख हैं। इसी प्रकार 15वीं शती की एक अन्य रचना 'पृथ्वी चंद्र–चरित' का भी विवरण है। राजस्थानी गद्य की भाषा–शैली में पर्याप्त अंतर मिलता है।

2. **मैथिली गद्य** – मैथिली गद्य की भी दीर्घ परंपरा मिलती है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ ज्योतिरीश्वर कृत 'वर्ण–रत्नाकर' है, जिसका रचनाकाल 1324 ई. माना जाता है। यह वस्तुतः भारतीय काव्यशास्त्र, कलाशास्त्र एवं ज्ञान–विज्ञान का कोश है, जिसमें विभिन्न विषयों का वर्णन काव्यशास्त्रीय दृष्टि से किया गया है। प्रसिद्ध गीतिकार विद्यापति ठाकुर ने अपनी दो गद्य रचनाओं 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' द्वारा गद्य–परंपरा को आगे बढ़ाया। यह गद्य–पद्य मिश्रित ऐतिहासिक काव्य है। मैथिली गद्य में तत्सम शब्दों की बहुलता है।

3. **ब्रजभाषा गद्य** – ब्रजभाषा के गद्य–साहित्य को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (1) मौलिक ग्रंथ (2) टीका साहित्य (3) अनूदित ग्रंथ। मौलिक ग्रंथ में गोरखनाथ कृत 'गोरखसार' प्रमुख है। ब्रजभाषा गद्य के विकास में सर्वाधिक योगदान पुष्टि–संप्रदाय के भक्त लेखकों ने दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा रचित 'शृंगाररस–मंडल', 'यमुनाष्टक', 'नवरत्न सटीक' प्रमुख हैं। चतुर्भुज दास द्वारा रचित षटऋतु की वार्ता, गोकुलनाथ द्वारा रचित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवन् की वार्ता' आदि प्रमुख हैं।

   वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के कुछ भक्तों ने भी गद्य लिख कर रचनाएं प्रस्तुत की हैं, जिनमें नाभादास कृत 'अष्टयाम', यशवंत सिंह कृत 'सिद्धांत बोध' आदि उल्लेखनीय हैं। कुछ लेखकों ने काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र तथा अन्य शास्त्रीय विषयों पर विचार करने के उद्देश्य से भी गद्यात्मक रचनाएं प्रस्तुत कीं।

   टीका साहित्य के अंतर्गत विभिन्न साहित्यिक धार्मिक तथा अन्य प्रकार के ग्रंथों की टीकाओं के रूप में लिखित गद्य रचनाएं ब्रजभाषा में मिलती हैं। इनमें प्रमुख हैं– शिक्षा ग्रंथ की टीका, हित चौरासी की टीका, रस रहस्य सटीक, बिहारी सतसई टीका, भाषामृत, अलंकार रत्नाकर तथा भक्तमाल की टीकाएं आदि।

   ब्रज भाषा गद्य में संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से अनूदित ग्रंथ भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। इन अनुवाद ग्रंथों की भाषा–शैली पूर्वोक्त टीकाओं की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है। अस्तु ब्रजभाषा में गद्य–साहित्य पर्याप्त है पर उसमें साहित्यिकता एवं कलात्मकता ही दृष्टि से उच्चकोटि का साहित्य नहीं है।

4. **खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य** – खड़ी बोली गद्य का प्रारंभिक रूप दक्षिणी–साहित्य में मिलता है। दक्षिणी साहित्यकारों ने अपनी बोली को दक्खिनी हिन्दी, हिंदवी, देहलवी, जबान हिंदुस्तान आदि नामों से पुकारा है। किंतु यह खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य है। दक्षिण के गद्य लेखकों में गेसूदराज, शाह बुरहानुद्दीन वजही, शम्सुल उश्शक है।

उत्तरी भारत में खड़ी बोली गद्य की परंपरा का सूत्रपात सत्रहवीं–अठारहवीं शती से होता है। खड़ी बोली गद्य की प्राचीनतम रचना 'चंद छंद बरनन की महिमा' है। अठारहवीं शती की दो प्रसिद्ध रचनाएं 'भाषायोगवशिष्ठ' एवं 'पद्मपुराण' हैं। इनके रचयिता क्रमशः रामप्रसाद निरंजनी तथा पं. दौलतराम हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के चार प्रमुख लेखक मुंशी सदासुखलाल, इंशाअल्ला खां, लल्लूलाल तथा सदल मिश्र हैं। सदासुखलाल ने 'सुखसागर' की रचना की। सदल मिश्र द्वारा रचित 'नासिकेतोपाख्यान', इंशा अल्ला खां द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल की 'माधवविलास', 'बेताल पचीसी', 'प्रेमसागर' प्रसिद्ध हैं। लल्लूलाल की भाषा उर्दू–फारसी मिश्रित है; जबकि सदल मिश्र की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। इंशाअल्ला खां की रचना 'हिंदवी' से प्रभावित है।

ईसाई–प्रचारकों का योगदान

ईसाई–प्रचारकों ने भी हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योग दिया है। विदेशी पादरियों ने भी इस कार्य में लेखकों का सहयोग प्राप्त किया तथा विभिन्न विषयों पर शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ईसाई–प्रचारकों ने गद्य–शैली के विकास की दृष्टि से भले ही विशेष सफलता प्राप्त न की हो, किंतु हिन्दी गद्य को विषय–विस्तार प्रदान करने एवं गद्य लेखन के प्रयासों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया।

ब्रह्म समाज का योगदान

हिन्दी गद्य के विकास में ब्रह्म समाज एवं राजा राममोहन राय का महत्वपूर्ण योगदान था। राजा राममोहन राय ने वेदांत–सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया तथा 'बंगदूत' नामक पत्रिका निकाली। उन्होंने बंगाली होते हुए भी हिन्दी को अपनाकर अपनी व्यापक राष्ट्रीयता का भी परिचय दिया। उन्होंने सुधाकर, बुद्धि प्रकाश आदि पत्रिकाएं निकालीं।

राजाओं का योगदान

आधुनिक काल के आरंभिक गद्य लेखकों में दो व्यक्तियों राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद तथा लक्ष्मणसिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शिवप्रसाद सितारेहिंद ने 'बनारस अखबार' निकाला। उनका झुकाव उर्दू मिश्रित हिन्दी की ओर था। उनके प्रारंभिक ग्रंथ हैं– मानवधर्मसार, उपनिषदसार आदि। राजा लक्ष्मणसिंह विशुद्ध हिन्दी के समर्थक थे। उन्होंने ब्रजभाषा को प्रोत्साहित किया।

आर्य समाज का योगदान

स्वामी दयानंद सरस्वती की सामाजिक संस्था आर्यसमाज ने भी हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योगदान किया। दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की स्थापना की और हिन्दी

के विकास में योगदान किया। आगे चलकर आर्य समाज ने पत्र–पत्रिकाओं, प्रवचनों, उपदेशों, जीवन–चरितों के माध्यम से हिन्दी साहित्य प्रस्तुत किया। वस्तुतः आर्य समाज ने गद्य की विभिन्न विधाओं एवं उनके विभिन्न माध्यमों को अपने प्रचार का साधन बनाते हुए हिन्दी गद्य साहित्य की उन्नति में पर्याप्त योग दिया।

भारतेंदु युग

हिन्दी गद्य के विकास में भारतेंदु युग का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु युग की स्थापना में भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रमुख स्थान है। भारतेंदु जी ने गद्य–शैली को परिमार्जित एवं परिष्कृत करते हुए उसका मार्ग निश्चित किया तो दूसरी ओर उन्होंने निबंध, नाटक, इतिहास, आलोचना, संस्मरण, यात्रा–विवरण आदि गद्य रूपों की परंपरा का प्रवर्तन किया। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों– प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, श्री निवासदास, राधाकृष्ण दास, सुधाकर द्विवेदी, कार्तिकप्रसाद खत्री, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी, बालमुकुंद गुप्त आदि ने भी गद्य के विकास में विभिन्न प्रकार से योग दिया।

द्विवेदी युग

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में नई गति महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयासों से आई। वे सन् 1900 में सरस्वती के संपादक नियुक्त हुए। द्विवेदी जी ने भाषा के परिमार्जन एवं परिष्कार का कार्य किया। गद्य के क्षेत्र में भाषा की शुद्धता, शब्दरूपों की एकरूपता, व्याकरण के दोष–परिष्कार आदि की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने ऐतिहासिक, राजनीतिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और भौगोलिक विषयों पर अपने निबंध लिखे। द्विवेदी जी के समकालीन अन्य गद्य लेखकों में डॉ. श्यामसुंदर दास, माधवप्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबंधु, बालमुकुंद गुप्त, गोपालराम गहमरी, लाला भगवानदीन प्रमुख हैं।

शुक्ल युग

हिन्दी गद्य के इस उत्कर्ष में जहां निबंध–समालोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, गुलाबराय जैसे प्रतिष्ठित लेखक थे, तो नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद जैसी उत्कृष्ट प्रतिभा थी, कथा साहित्य में प्रेमचंद जैसे शिखरस्थ साहित्यकार थे। गद्य की प्रांजलता, प्रौढ़ता और सामर्थ्य की दृष्टि से शुक्ल युग में महत्वपूर्ण कार्य हुए। उक्त लेखकों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, राहुल सांकृत्यायन, वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण प्रेमी ने विशेष योगदान दिया है।

शुक्लोत्तर युग

शुक्लोत्तर युग में हिन्दी गद्य का विविधमुखी विस्तार हुआ, उसका आकलन कर पाना सीमित पंक्तियों में संभव नहीं। समाचारपत्रों एवं पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से हिन्दी गद्य में निरंतर श्रीवृद्धि होती गई। वर्तमान में हिन्दी गद्य के क्षेत्र में विभिन्न गद्य शैलियों का विकास हुआ। नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी के अतिरिक्त समालोचना, रिपोर्ताज, गद्यगीत, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा–साहित्य, पत्र–साहित्य हिन्दी गद्य की अन्य लोकप्रिय विधाएं हैं। इन विधाओं की प्रगति हो रही है तथा उनके विकास की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

वस्तुतः हिन्दी एक जीवित भाषा है जिसके बोलने वालों में पर्याप्त प्रतिभा, अद्भुत कर्मठता एवं निरंतर विकास हो रहा है।

1.3 उपन्यास

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था। उनकी शिक्षा नीति से प्रभावित होकर जो प्रदेश सबसे पहले अंग्रेजी साहित्य के संपर्क में आए उनमें उपन्यासों का प्रचलन अपेक्षाकृत पहले हुआ। यही कारण है कि हिन्दी की अपेक्षा बांग्ला साहित्य में उपन्यासों की रचना पहले हुई और आगे चलकर हिन्दी उपन्यास पर उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं प्रारंभिक काल में अनेक बांग्ला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद भी किया गया।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास किसे माना जाए। हिन्दी गद्य का विकसित रूप सामने आते ही उपन्यासों की रचना होने लगी। सन् 1877 में श्रद्धाराम ने *भाग्यवती* उपन्यास लिखा और उसके बाद सन् 1882 में लाला श्रीनिवासदास ने *परीक्षा गुरु*। *भाग्यवती* में नारी शिक्षा और उपदेश से अधिक कुछ नहीं है; जबकि *परीक्षा गुरु* में उपदेशात्मकता के साथ–साथ समस्त औपन्यासिक तत्वों का समावेश भी है। इसलिए 'परीक्षा गुरु' को ही हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है।

1.3.1 उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि हिन्दी उपन्यासों का जन्म सुधारवादी भावनाओं की पृष्ठभूमि में हुआ। इस समय देश में समाज के नैतिक उत्थान और सांस्कृतिक परंपराओं की रक्षा के लिए कई आंदोलन चल रहे थे। इसीलिए प्रारंभिक उपन्यासों में दो प्रकार की रचनाएं सामने आती हैं– उपदेशात्मक तथा मनोरंजन प्रधान। इसके साथ ही एक दूसरी धारा अनूदित उपन्यासों की रही जिसमें अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला आदि भाषाओं में लिखे उपन्यासों के अनुवाद प्रस्तुत किए गए।

भारतेंदु से लेकर अब तक के उपन्यासकारों में प्रेमचंद का नाम सर्वोपरि है। अतः हम प्रेमचंद को ही उपन्यास की विकास यात्रा का केंद्र बिंदु मानकर संपूर्ण विकास क्रम को समझने का प्रयत्न करेंगे। अध्ययन की सुविधा के लिए हम हिन्दी उपन्यास को चार युगों में विभाजित कर सकते हैं–

1. पूर्व प्रेमचंद युग
2. प्रेमचंद युग
3. उत्तर प्रेमचंद युग
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

1. **पूर्व प्रेमचंद युग**– आपने भारतेंदु युग में विकसित गद्य–विधाओं के बारे में पढ़ा है और यह भी जानते हैं कि आधुनिक युग का जनक हम भारतेंदु को ही मानते हैं। आपने उनके नाटक साहित्य के बारे में पढ़ा और काव्य व साहित्य की अनेक विधाओं में उनके योगदान का परिचय प्राप्त किया। अपने जीवन काल में उन्होंने 'कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' नाम से एक उपन्यास भी लिखना शुरू किया था किंतु वह अधूरा ही रह गया। इसके अतिरिक्त भारतेंदु ने एक मराठी उपन्यास *पूर्ण*

प्रकाश' और *'चंद्र प्रभा'* का अनुवाद भी किया था। इसके बाद उपन्यासों की एक लंबी कड़ी दृष्टिगत होती है जिसमें कई प्रकार के मौलिक और अनुदित उपन्यासों की रचना हुई।

भारतेंदु के समय में ही श्रीनिवास दास ने *'परीक्षा गुरु'* नाम का एक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा था जिसकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है। इसमें पहली बार कुछ औपन्यासिक तत्वों का समावेश किया गया था इसीलिए इसे हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया जाता है। इस रचना में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है जो कुसंगति में पड़ जाता है। अंत में एक सज्जन मित्र द्वारा उसका उद्धार होता है। इस उपन्यास में उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रधान है। अतः हम इसे एक सुधारवादी उपन्यास कह सकते हैं। इसके बाद भी कुछ छुट–पुट प्रयत्न होते रहे। ठाकुर जगमोहन सिंह का *'श्याम स्वप्न'*, रत्नचंद प्लीडर का *'नूतनचरित'*, बालकृष्ण भट्ट का *'नूतन ब्रह्मचारी'* और *'सौ अजान एक सुजान'*, राधाकृष्ण दास का *'निस्सहाय हिंदू'*, बालमुकुंद गुप्त का *'कामिनी'* आदि उपन्यास इसी समय में लिखे गए। ये सभी उपन्यास सामाजिक कहे जा सकते हैं।

इसके बाद उपन्यास सर्जना का यह क्रम निरंतर चलता रहा। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी सब प्रकार के उपन्यास रचे जाने लगे। यदि ऐसा कहा जाए कि उपन्यासों की एक बाढ़–सी आ गई तो अत्युक्ति न होगी किंतु प्रमुख नाम केवल तीन हैं– किशोरी लाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी।

देवकीनंदन खत्री हिन्दी के पहले मौलिक उपन्यास लेखक थे जिनके तिलस्मी उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम मच गई। *'चंद्रकांता संतति'* उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। कहते हैं इस उपन्यास को पढ़ने के लिए बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी। इन उपन्यासों में घटनाओं के साथ कल्पनाशीलता की प्रधानता थी। इससे जनता का मनोरंजन तो खूब हुआ किंतु कलात्मक तुष्टि नहीं। इसी समय अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने *'अधखिला फूल'* और *'ठेठ हिन्दी का ठाठ'* नामक उपन्यास लिखे जिनका महत्व केवल भाषायी स्तर का है। लज्जा राम मेहता ने कुछ आदर्शवादी उपन्यासों की रचना की।

इन मौलिक उपन्यासों के साथ–साथ विभिन्न भाषाओं; यथा अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला, मराठी आदि में उपन्यासों के अनुवाद किए जाने की परंपरा भी चलती रही। इन उपन्यासों का हिन्दी के औपन्यासिक रचना–विधान पर विशेष प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास साहित्य का आरंभ भले ही सामान्य स्तर का रहा किंतु इसका उत्तरोत्तर विकास बड़े ही उत्साहजनक वातावरण में हुआ। आलोचकों का कथन है कि हिन्दी में जितने उपन्यास इस युग में रचे गए, परवर्ती किसी युग में नहीं।

2. **प्रेमचंद युग–** प्रेमचंद का हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास की परंपरा में एक महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने हिन्दी उपन्यास को काल्पनिक तथा तिलस्मी,

ऐय्यारी, जासूसी के इंद्रजाल से निकालकर मानव जीवन की यथार्थ समस्याओं से संबद्ध किया। इस समय देश में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। गांधी जी राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य कर रहे थे प्रेमचंद ने वही कार्य साहित्यिक क्षेत्र में किया। उनके उपन्यासों में सर्वत्र गांधीवादी नीतियों का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने हमेशा शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। समाज में विद्यमान अनेक समस्याओं; यथा विधवा विवाह, वेश्या समस्या, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, अवैध प्रेम, जाति–भेद आदि को वाणी दी। वे समाज का परिसंस्कार करना चाहते थे इसलिए उनका दृष्टिकोण प्रायः आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी रहा।

प्रेमचंद ने दो प्रकार के उपन्यास लिखे– राजनीतिक और सामाजिक। *'प्रेमा'* और *'वरदान'* उन दिनों के उपन्यास हैं जब वे नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखा करते थे। *'सेवासदन'* कलात्मक दृष्टि से प्रथम प्रौढ़ उपन्यास है जिसमें मध्यमवर्ग की विडंबना को दिखलाकर वेश्या समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। *'प्रेमाश्रम'* में ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण करते हुए किसानों की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। *'रंगभूमि'* में शासक वर्ग के अत्याचार का चित्रण है। *'कर्मभूमि'* एक राजनीतिक–सामाजिक उपन्यास है जिसमें जनता की साम्राज्य विरोधी भावना व्यक्त हुई है। *'प्रतिज्ञा'* की समस्या विधवा–विवाह से जुड़ी है। *'गबन'* में आभूषणों की लालसा के दुष्परिणाम को चित्रित किया गया है। *'कायाकल्प'* पुनर्जन्मवाद से संबद्ध है। *'निर्मला'* में अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को बतलाते हुए विमाता की समस्या को अंकित किया गया है। *'गोदान'* में किसान और मजदूर के शोषण की करुण कथा कही गई है। यह उपन्यास मुंशी प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें समस्या को उठाकर गांधीवादी ढंग से उसका कोई समाधान नहीं किया गया। यह उपन्यास सर्वथा एक यथार्थवादी उपन्यास है। प्रेमचंद ने सर्वथा आदर्शवाद और यथार्थवाद में एक अद्‌भुत संतुलन बनाकर रखा। उन्होंने वर्ग–वैषम्य, आर्थिक शोषण, सामाजिक–असमानता, पूंजीवादी संस्कृति और बुर्जुआ मनोवृत्ति के विरुद्ध अपने उपन्यासों के माध्यम से एक ऐसा जनमत तैयार किया जिससे देश में प्रगतिशील समाज की स्थापना हो सके। इस प्रकार, प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को प्रौढ़ता ही नहीं दी अपितु अपने समकालीन रचनाकारों का मार्गदर्शन भी किया।

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में बहुत से नाम उल्लेखनीय हैं; यथा जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, भगवतीचरण वर्मा, पांडेय, बेचन शर्मा उग्र, वृंदावनलाल वर्मा, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी आदि।

जयशंकर प्रसाद ने केवल तीन उपन्यास लिखे। *'कंकाल'*, *'तितली'* एवं *'इरावती'*। *'इरावती'* उनका अधूरा उपन्यास है। 'कंकाल' में उन्होंने स्त्री–पुरुष की प्रेम–समस्या पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से विचार किया। 'तितली' में अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है। इस प्रकार, प्रसाद का दृष्टिकोण प्रेमचंद से नितांत भिन्न था। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में समाज और सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता दी किंतु प्रसाद ने व्यक्ति और उसकी वैयक्तिक समस्याओं को विभिन्न सामाजिक

समस्याओं के संदर्भ में देखा है। आगे चलकर जैनेंद्र और इलाचंद्र जोशी ने मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखे। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैनेंद्र के उपन्यास *'परख'*, *'सुनीता'* और *'कल्याणी'* तथा इलाचंद्र जोशी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में *'संन्यासी'* को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

चतुरसेन शास्त्री ने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे। किंतु वृंदावनलाल वर्मा ने केवल ऐतिहासिक उपन्यासों के आधार पर ख्याति अर्जित की। 'झांसी की रानी' इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। इसी समय भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'चित्रलेखा' भी विशेष रूप से चर्चित हुआ।

प्रेमचंद युग का अध्ययन करते हुए आपने देखा कि इस काल में उपन्यास नामक विधा ने पहले से कहीं अधिक विकास किया। इस युग में अधिकांशतः मौलिक उपन्यासों की रचना हुई तथा उपन्यासकारों में पहले से कहीं अधिक कलात्मक संयम दिखाई दिया। इस युग के वर्ण्य विषयों में भी विविधता है। सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे गए। समाज में जैसे–जैसे परिवर्तन आता रहा, वैसे–वैसे उपन्यासकारों की चिंतनधारा अपने युग के यथार्थ से प्रभावित होती रही। यद्यपि प्रेमचंद गांधीवादी धारा से प्रभावित रहे, तो ऐतिहासिक उपन्यासकार प्राचीन सांस्कृतिक गौरव की रक्षा में लगे रहे एवं मनोवैज्ञानिक व मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार पाश्चात्य चिंतकों– फ्रायड, एडलर आदि के सिद्धांतों से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में व्यक्ति की कुंठाओं का चित्रण करते रहे।

3. **उत्तर प्रेमचंद युग**– प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को जो ठोस आधारभूमि दी उससे इस विधा के विकास की चौमुखी राहें खुल गईं। इस समय द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था और पाश्चात्य साहित्य में दो प्रभावशाली विचारधाराएं प्रचलित हो रही थीं– फ्रायडवादी सिद्धांतों से प्रभावित मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणवादी और दूसरी मार्क्सवादी के सिद्धांतों से प्रभावित प्रगतिवादी उपन्यास धारा। इनका समानांतर विकास प्रेमचंद के समय में ही हो गया था। प्रेमचंद का *'गोदान'* तथा जैनेंद्र और इलाचंद्र जोशी के उपन्यास इस कथन की पुष्टि करते हैं। प्रेमचंद अपने उपन्यासों द्वारा एक प्रगतिशील समाज की स्थापना अवश्य करना चाहते थे किंतु उन्होंने इसके लिए न तो कोई मार्क्सवादी झंडा ही गाड़ा और न ही नारेबाजी की, जैसा कि आगे चलकर यशपाल ने किया। हिन्दी में यशपाल को मार्क्स के सिद्धांतों से प्रभावित प्रगतिवादी औपन्यासिक धारा का प्रवर्तक माना जाता है। इनके उपन्यासों में से *'दादा कामरेड'*, *'देशद्रोही'*, *'मनुष्य के रूप'* इसी कोटि के उपन्यास हैं। इनमें इनकी साम्यवादी विचारधारा स्पष्ट परिलक्षित होती है। *'दिव्या'* यशपाल का एक ऐतिहासिक उपन्यास है किंतु इसमें भी इनकी चिंतन पद्धति समाजवादी ही है। इसी धारा में आगे चलकर रांगेय राघव ने *'घरौंदे'* तथा *'हुजूर'* उपन्यासों की रचना की। इनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी था। इन उपन्यासों में इन्होंने आर्थिक वैषम्य और शोषण आदि विभिन्न समसामयिक विकृतियों पर चोट की। राहुल सांकृत्यायन ने *'जीने के लिए'* *'जय यौधेय और सिंह सेनापति'* लिखे। इसके

अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल अंचल व नागार्जुन ने कई उपन्यास लिखे जिनमें पूंजीवादी संस्कृति के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया है।

फ्रायड के सिद्धांतों से प्रभावित होकर जैनेंद्र *'परख'*, *'सुनीता'* और *'त्यागपत्र'* उपन्यास पहले ही लिख चुके थे। इस युग में प्रकाशित उनके उपन्यास– *'कल्याणी'*, *'सुखदा'*, *'विकास'*, *'व्यतीत'*, *'जयवर्धन'* आदि में यह प्रवृत्ति मनोविज्ञान, दार्शनिकता आदि माध्यम से विविध रूप में उभरी। उनके नारी पात्र यदि एक ओर समाज की मर्यादाओं को बनाए रखना चाहते हैं, तो दूसरी ओर अपने अस्तित्व की पहचान भी कराना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में आत्म–पीड़न के अतिरिक्त उनके पास कोई राह शेष नहीं रहती। यही कारण है कि उनके पात्र समाज को न तोड़कर स्वयं टूटते हैं।

इसी कड़ी में आगे चलकर अज्ञेय ने *'शेखर एक जीवनी'* लिखकर हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ उपस्थित किया। कथ्य, शिल्प और भाषा के स्तर पर यह एक नवीन प्रयोग था। इस उपन्यास का मूल मंतव्य शेखर के व्यक्ति की खोज और शेखर के 'व्यक्ति' का साक्षात्कार है।

इसी समय पूर्व प्रेमचंद युग से चली आ रही ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा को वृंदावनलाल वर्मा ने आगे बढ़ाया। भले ही इन्होंने प्रेमचंद युग में लिखना आरंभ कर दिया था किंतु इनकी लेखनी अबाध गति से चलती रही। इन्होंने *'कचनार'*, *'मुसाहिबजू'*, *'कुंडली–चक्र'*, *'प्रत्यागत'*, *'माधव जी सिंधिया'* और *'मृगनयनी'* आदि कई उपन्यास लिखे। *'मृगनयनी'* इनका सर्व प्रसिद्ध उपन्यास है। राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, निराला, चतुरसेन शास्त्री तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। राहुल के *'वोल्गा से गंगा'*, चतुरसेन शास्त्री के *'वैशाली की नगरवधू'* और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के *'बाणभट्ट की आत्मकथा'* ने विशेष ख्याति अर्जित की।

सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में उग्र, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण गुप्त, भगवती प्रसाद वाजपेयी, विष्णु प्रभाकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी समय उपेंद्रनाथ ने अपने उपन्यासों में नगरों में वास कर रहे मध्यमवर्गी सामाजिक जीवन की अनेक कुंठाओं का सशक्त ढंग से चित्रण किया। *'गिरती दीवारें'* इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। यथार्थवादी परंपरा के उपन्यासों में यह उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

इस प्रकार, औपन्यासिक दृष्टि से यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। प्रेमचंद के पश्चात समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित करने वाले उपन्यासकारों में यशपाल, मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अज्ञेय, ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा और यथार्थवादी उपन्यासकारों में उपेंद्रनाथ अश्क ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

इस युग के उपन्यासों में विषय–वैविध्य है। भाषा और शिल्प के धरातल पर भी कई नवीन प्रयोग मिलते हैं।

4. **स्वातंत्र्योत्तर युग**– स्वाधीनता के पश्चात भारतवासियों को एक साथ कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। सत्ता का बदला जाना, आर्थिक विपन्नता, हिंदु–मुसलिम वैमनस्य के भयंकर हिंसक परिणाम, विभाजन की विभीषिका– इन सबसे साधारण जनता त्रस्त हो उठी। ऐसी स्थिति में जबकि चारों ओर अंधकार था, रचनाकारों में एक नया भावबोध उत्पन्न हुआ जो घोर सामाजिक और अपूर्व जिजीविषा का भाव लिए हुए था। अतः इस समय हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई देता है। आपके अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें प्रवृत्यात्मक वर्गों में विभाजित किया जा रहा है; यथा सामाजिक, समाजवादी यथार्थवाद, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, प्रयोगशील, आधुनिकता–बोध आदि।

1.3.2 उपन्यास का स्वरूप

1. **सामाजिक उपन्यास**– सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में आप बहुत से लेखकों और उनकी रचनाओं का परिचय पहले प्राप्त कर चुके हैं; जैसे– पांडेय, बेचन शर्मा उग्र, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उदयशंकर भट्ट, सियारामशरण गुप्त, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, विष्णु प्रभाकर, उपेंद्रनाथ अश्क। आगे चलकर अमृतलाल नागर भी इसी कड़ी में जुड़ गए और उपन्यास के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

   यहां केवल प्रमुख उपन्यासकारों को ही ले रहे हैं जो निरंतर उपन्यास लिखने में प्रवृत्त रहे; जैसे भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर।

   भगवतीचरण वर्मा ने इस काल में कई उपन्यास लिखे; जैसे– *टेढ़े–मेढ़े रास्ते, आखिरी दांव, भूले बिसरे चित्र, रेखा, सीधी सच्ची बातें* और *सबहिं नचावत राम गोसाईं*। *'चित्रलेखा'* के पश्चात *'भूले बिसरे चित्र'* इनकी सर्वाधिक सशक्त रचना है।

   उपेंद्रनाथ अश्क अपने लेखन को सशक्त बनाने में सतत प्रयत्नशील हैं। उनके उपन्यासों में *'गिरती दीवारें'* सर्वोत्तम है, जो मध्यमवर्गीय नैतिक वर्जनाओं को तोड़ने की प्रेरणा देता है। *'शहर में घूमता आईना'* और *'एक नन्ही कंदील'* इस उपन्यास के अगले खंड हैं और अपने–आप में पूर्ण हैं।

   इसके अतिरिक्त *'गरम राख', 'बड़ी–बड़ी आंखें', 'पत्थर–पत्थर', 'बांधो न नाव इस ठांव'* इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

   इस **युग** के सामाजिक उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशेष स्थान है। 'प्रेमचंद' के बाद उन्हें यथार्थवादी चेतना का प्रमुख उपन्यासकार कहा जा सकता है। *'नवाबी मसनद', 'सेठ बांकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'शतरंज के मोहरे', 'नाच्यो बहुत गोपाल', 'खंजन नयन', 'सुहाग के नूपुर', 'करवट और पीढ़ियां'* इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में इतिहास, पुरातत्व और आधुनिकता का सुंदर समावेश मिलता है। *'बूंद और समुद्र'* इनका सफल एवं बहुचर्चित उपन्यास है। 'बूंद और समुद्र' क्रमशः व्यक्ति और समाज के प्रतीक हैं। इसमें भारतीय समाज के विभिन्न रूपों, रीति–नीतियों,

आचार–विचारों, जीवन–दृष्टियों, मर्यादाओं, टूटती और निर्मित होती व्यवस्थाओं के अनगिनत चित्र हैं। इस उफनते हुए समुद्र में व्यक्ति अर्थात बूंद की क्या स्थिति है यही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है। व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों का चित्रण इस उपन्यास में जिस रोचक शैली में किया गया है, उसने इसे एक विशिष्ट औपन्यासिक कृति बना दिया है। *'मानस का हंस'* में गोस्वामी तुलसीदास, और *'खंजन नयन'* में सूरदास के जीवन–वृत्त को जिस प्रकार उन्होंने एक सफल औपन्यासिक व्यक्तित्व प्रदान किया है, वह निश्चय ही अपूर्व है।

2. **समाजवादी यथार्थवाद के उपन्यास**– स्वातंत्र्योत्तर काल में अश्क और नागर के साथ–साथ यशपाल ने अपनी विशिष्ट मार्क्सवादी विचारधारा के कारण अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित किया। *'अमिता'* और *'दिव्या'* को छोड़कर उनके शेष उपन्यास समाजवादी यथार्थवाद का चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रारंभिक उपन्यासों के नाम *'दादा कामरेड'*, *'देशद्रोही'*, *'पार्टी कामरेड'* आदि इस बात की पुष्टि करते हैं कि वे क्रांतिकारी दल से संबंधित थे और मार्क्सवादी विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव था। यह उपन्यास दो भागों में लिखा गया– *'वतन और देश'* तथा *'देश का भविष्य'*। इस उपन्यास में उन्होंने जीवन के विविध रूपों, समस्याओं और जटिलताओं को विस्तार से चित्रित किया है। पहला भाग देश के विघटन को प्रस्तुत करता है, इसलिए अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक, यथार्थ और मार्मिक बन पड़ा है। डॉ. नगेंद्र *'झूठा सच'* को हिन्दी का महाकाव्यात्मक उपन्यास मानते हैं। इसके अतिरिक्त उहोंने *'मनुष्य का रूप'*, *'बारह घंटे'* और *'मेरी तेरी उसकी बात'* उपन्यास लिखे। *'मनुष्य के रूप'* में परिवर्तनशील मानवीय रूप के मूल में आर्थिक समस्या की भूमिका स्वीकार की गई है और *'मेरी तेरी उसकी बात'* में भारत के स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल के सामाजिक–राजनीतिक जीवन का चित्रण किया गया है।

यशपाल की परंपरा के उपन्यासकारों में राहुल सांकृत्यायन का *'सिंह सेनापति'* और *'वोल्गा से गंगा'*, नागार्जुन का *'रतिनाथ की चाची'*, *'बलचनमा'*, *'बाबा बटेसरनाथ'*, *'वरुण के बेटे'*, *'दुख मोचन'*, रांगेय राघव के *'घरौंदा'*, *'सीधा सादा रास्ता'*, *'कब तक पुकारूं'* और *'मुर्दों का टीला'*, भैरवप्रसाद गुप्त का *'मशाल'*, *'गंगा मैया'* और *'सती मैया का चौरा'*, अमृतराय का *'बीज'*, *'नागफनी का देश'* और *'हाथी के दांत'* विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रायः इन सभी उपन्यासों में वर्ग वैषम्य और आर्थिक शोषण का चित्रण किसी न किसी रूप में प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

3. **ऐतिहासिक उपन्यास**– यद्यपि हिन्दी में यह धारा बहुत प्रखर नहीं है फिर भी पूर्व प्रेमचंद युग से चली आ रही है। पहले के उपन्यास ऐतिहासिक न होकर केवल इतिहास नामधारी थे। इस क्षेत्र को प्रतिष्ठित करने वाले हैं– वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी और आचार्य चतुरसेन शास्त्री। इनमें से वृंदावनलाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री प्रेमचंद युग में ही अपने नाम को प्रतिष्ठित कर चुके थे। वृंदावन लाल वर्मा की *'झांसी की रानी'* और *'मृगनयनी'*, चतुरसेन

शास्त्री की *'वैशाली की नगरवधू'* अत्यंत सुगठित रचनाएं हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने *'बाणभट्ट की आत्मकथा'* के अतिरिक्त *'चारुचंद्र लेख'*, *'पुनर्नवा'* और *'अनामदास का पोथा'* की रचना की। यशपाल का *'दिव्या'* और *'अमिता'*, भगवतीचरण वर्मा का *'चित्रलेखा'* भी ऐतिहासिक उपन्यास है जिनके विषय में पहले चर्चा की जा चुकी है।

4. **आंचलिक उपन्यास**– स्वातंत्र्योत्तर काल में एक नई धारा सामने आई। कुछ उपन्यासों में केवल प्रदेश विशेष की संस्कृति को उसके सजीव वातावरण में प्रस्तुत किया गया। इस दिशा में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। *'मैला आंचल'* और *'परती परिकथा'* इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनमें बिहार प्रदेश की संस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है। उदयशंकर भट्ट का *'सागर लहरें'* और *'मनुष्य'*, रांगेय राघव का *'कब तक पुकारूं'*, नागार्जुन का *'बलचनमा'* तथा *'वरुण के बेटे'*, देवेन्द्र सत्यार्थी का *'रथ के पहिये'*, रामदरश मिश्र का *'पानी के प्राचीर'*, शैलेश मटियानी का *'होल्दार'*, शिवप्रसाद मिश्र का *'बहती गंगा'*, *'टूटता हुआ'*, विवेकी राय का *'सोना माटी'*, *'समर शेष है'*, महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

आजकल हिन्दी में नगर और ग्रामीण आंचल से संबंधित अनेक उपन्यास लिखे जा रहे हैं। इन उपन्यासों की सर्वप्रमुख विशेषता है– प्रादेशिक तथा स्थानीय रंग।

5. **मनोवैज्ञानिक उपन्यास**– मनोवैज्ञानिक–मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा व्यक्ति के अंतःसंघर्ष का चित्रण किया जाने लगा। उपन्यासकार व्यक्ति के अवचेतन, तथा उपचेतन की परतें खोलने लगा। आपने पहले पढ़ा कि इस दिशा में पश्चिम में विचारकों– फ्रायड, युंग, एडलर आदि ने जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय के चिंतन को प्रभावित किया।

फलस्वरूप इलाचंद्र जोशी ने बाद के उपन्यासों– *'जिप्सी'*, *'जहाज का पंछी'*, आदि में भी व्यक्ति की दमित वासनाओं, कुंठाओं आदि का चित्रण किया और जैनेंद्र ने *'परख'*, *'सुनीता'*, *'त्यागपत्र'*, *'कल्याणी'* आदि में नारी–पुरुष के प्रेम की समस्या का मनावैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया। अज्ञेय पर फ्रायड, टी.एस. इलियट और डी.एच. लारेंस का भी प्रभाव रहा। अज्ञेय ने *'शेखर एक जीवनी'* के बाद स्वातंत्र्योत्तर युग में *'नदी के द्वीप'* और *'अपने–अपने अजनबी'* लिखा। इस उपन्यास में मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद का सुंदर समन्वय है। या यों कहा जाए कि इसमें अस्तित्वादी दर्शन सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में उभारा गया है। भाषा शिल्प और रूप–विन्यास के धरातल पर इस उपन्यास की बहुत चर्चा हुई। *'अपने–अपने'* अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है। इसमें समस्या स्वतंत्रता के वरण की है जो संत्रास, अकेलेपन, मृत्यु–बोध, अजनबीपन आदि से सहज ही जुड़ जाती है। अज्ञेय ने इसमें अस्तित्ववादी स्वतंत्रता के मूल अर्थ को ही बदल दिया है। शेखर में व्यक्ति का अपने से साक्षात्कार मुख्य था। उसकी खोज स्वातंत्र्य की खोज के साथ–साथ एक व्यक्तित्व की खोज भी थी। *'नदी के द्वीप'* एक व्यक्तित्व की खोज न होकर चार व्यक्तियों की खोज है, इनकी अलग–अलग भूमिकाएं हैं किंतु इनका आपस में टकराव इन्हें एक–दूसरे के साथ जोड़ता है।

इसी धारा में आगे चलकर डॉ. देवराज ने अपने उपन्यासों *'पथ की खोज'*, *'बाहर भीतर'*, *'रोड़े और पत्थर'*, *'अजय की डायरी'* आदि में शिक्षित मध्यमवर्ग के करुण यथार्थ का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया।

6. **प्रयोगशील उपन्यास–** कविता में नए प्रयोग के साथ–साथ कहानी और उपन्यास आदि में भी नए प्रयोग किए जा रहे हैं। पूर्ववर्ती लेखकों ने अपने प्रयोगों में कहानी और चरित्र का पूरा ध्यान रखा था। इस दौर में कहानी का महत्व नहीं रहा। परिणामस्वरूप क्रिया–कलाप के प्रति सचेत एवं तराशे हुए पात्र भी नहीं रहे। इन उपन्यासों में जिंदगी पूरी तरह विश्लेषित न होकर चेतन प्रवाह के साथ जुड़ गईं अतः प्रतीकों के माध्यम से बात की जाने लगी। यही कारण है कि शिल्प के धरातल पर भी कई नए प्रयोग किए जाने लगे हैं। धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, गिरिधर गोपाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के उपन्यास इसी श्रेणी के हैं।

   धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवां घोड़ा' में अलग–अलग कहानियां किस्सागो के व्यक्तित्व से जुड़कर बन जाती हैं। इसकी रचना आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि में हुई है। प्रभाकर माचवे के *'परंतु'*, *'सांचा'* आदि उपन्यासों में न तो कोई व्यवस्थित कथानक है और न चरित्र निर्माण। लेखक ने चेतना प्रवाह शैली में पुराने नैतिक मूल्यों पर प्रहार करके नवीन मूल्यों की तलाश की है। रुद्र की *'बहती गंगा'* में काशी नगरी के पिछले दो सौ वर्षों के जीवन–प्रवाह को सत्रह तरंगों (कहानियों) में अंकित किया गया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के *'सोया हुआ जल'* में एक यात्री–निवास में ठहरे हुए यात्रियों की राज की जिंदगी का वर्णन है। यह उपन्यास चेतना प्रवाह शैली और सिनेरियो तकनीक में लिखा गया प्रतीकात्मक उपन्यास है। नरेश मेहता का *'डूबते मस्तूल'* और ख्वाजा बदी उज्जमां का *'एक चूहे की मौत'* भी अनेक प्रकार की विसंगतियों का चित्रण करने वाले प्रयोगशील उपन्यास हैं।

7. **आधुनिकता बोध के उपन्यास–** औद्योगिकीकरण, बौद्धिकता के अतिरेक, यंत्रीकरण, दो महायुद्ध तथा अस्तित्वादी चिंतन के फलस्वरूप जो स्थिति उत्पन्न हुई है उसका प्रतिबिम्ब सभी साहित्यिक विधाओं में देखा जा सकता है। आज का उपन्यासकार व्यक्ति की खोज में संलग्न है। उसके लिए आदमी और उसका अस्तित्व महत्वपूर्ण है। इसकी झलक तो हमें इससे पहले लिखे गए कुछ उपन्यासों में भी मिल जाती है किंतु उनमें अभिव्यक्ति का स्तर वैसा नहीं रहा जैसा कि मोहन राकेश के *'अंधेरे बंद कमरे में'* और *'न आने वाला कल'* तथा अंतराल में नजर आता है। 'अंधेरे बंद कमरे में' के अंतर्गत आस्थाविहीन समाज और अनिश्चिय की स्थिति में लटके हुए इंसान का चित्रण है। *'न आने वाला कल'* का नायक सब कुछ को अस्वीकार कर एक निषेधात्मक स्थिति में जा पहुंचा है। पर यह अस्वीकार उसे कहीं भी ले जाने में असमर्थ है। अंत में जड़ जीवन जीने की सड़ांध ही उसकी नियति हो जाती है।

   निर्मल वर्मा का *'वे दिन'* आधुनिक संवेदना से संपन्न उपन्यास है। यह द्वितीय महायुद्ध के बाद की मानव–नियति को खोजता है। *'लालटीन की छत'* भी इनका

एक और उपन्यास है जहां व्यक्ति के 'होने', और 'जीने' में एक बड़ा भारी द्वंद्व है। *'वे दिन'* के सभी पात्र इसी द्वंद्व में जीते हैं। निर्मल वर्मा ने उन्हें निकट से पहचानने की चेष्टा की है। राजकमल चौधरी का *'मछली मरी हुई'* समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। श्रीकांत वर्मा का *'दूसरी बार'* महेंद्र भल्ला का *'एक पति के नोट्स'*, कृष्ण बलदेव वैद का *'उसका बचपन'*, कमलेश्वर का *'डाक बंगला'*, *'काली आंधी'*, *'एक सड़क सत्तावन गलियां'* आधुनिकता बोध के उपन्यास हैं। गिरिराज किशोर का *'लोग'* श्रीलाल शुक्ल का *'राग दरबारी'* भीष्म साहनी का *'झरोखे'*, *'कड़ियां'*, *'तमस'*, *'वासंती'*, *'भैय्यादास की माड़ी'* सामाजिक व्यंग्य के स्तर पर लिखे गए आधुनिकता बोध के उपन्यास हैं। मन्नू भंडारी के *'आपका बंटी'* और *'महाभोज'* प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कृष्णा सोबती ने *'मित्रों मर जानी'*, *'डार से बिछुड़ी'* और *'जिंदगीनामा'* लिखकर महानगरीय जीवन यथार्थ की पहचान करवाई।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे उपन्यासकार हैं जो निरंतर उपन्यास लेखन में जुटे हैं जिनमें से प्रमुख हैं गोविंद मिश्र, रवींद्र कालिया, नरेंद्र कोहली, राजेश शर्मा, मृदुला गर्ग, मणि मधुकर, ममता कालिया, निरुपम सेवती, पंकज बिष्ट, अब्दुल बिस्मिल्लाह, श्रवण कुमार गोस्वामी, संजीव आदि। इस प्रकार, उपन्यास विधा सतत विकासमना रही है तथा इसका भविष्य उज्ज्वल है।

1.3.3 प्रमुख उपन्यासकार

- **प्रेमचंद**

प्रेमचंद के आगमन से पूर्व भारतेंदु युग में कथा–साहित्य का आरंभ हो चुका था। इस समय केवल घटना–प्रधान तिलस्मी, जासूसी एवं ऐय्यारी उपन्यासों की ही रचना की जाती थी। प्रेमचंद ने कहानी और उपन्यास को कोरी कल्पनाओं के क्षितिज से उतारकर जीवित यथार्थ के साथ जोड़ दिया। उन्होंने घटना के स्थान पर चरित्र को महत्व दिया और जीवन की वास्तविक समस्याओं को केंद्र में रखा। प्रायः उनके उपन्यासों का लक्ष्य समाज–सुधार था। उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों में सामाजिक विकृतियों पर चोट की गई है। स्वाधीनता की लड़ाई, संयुक्त परिवार में विघटन, जातीय एकता, किसानों की समस्याएं, अछूतोद्धार, विधवा समस्या, देशी रियासतों की समस्याएं, औद्योगिकीकरण, सांप्रदायिक द्वेष, समाज के रूढ़िग्रस्त रिवाज, जाति–धर्म और परंपरा अनेक ऐसे कोण हैं जिन्हें प्रेमचंद की लेखनी ने अपना विषय बनाया। इससे यह ज्ञात होता है कि वे अपने समसामयिक क्रूर और निर्मम समाज के साथ निरंतर एक साहित्यिक लड़ाई लड़ते रहे।

प्रेमचंद के उपन्यासों में *'सेवासदन'*, *'प्रेमाश्रम'*, *'रंगभूमि'*, *'कायाकल्प'*, *'निर्मला'*, *'गबन'*, *'कर्मभूमि'*, *'गोदान'* प्रमुख हैं। *'मंगलसूत्र'* इनका अधूरा उपन्यास है। इन सभी रचनाओं में निम्न, निम्नमध्य एवं मध्यवर्ग की चेतना को अभिव्यक्ति दी गई है। इनका दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहा।

प्रेमचंद सच्चे अर्थों में विकासोन्मुख सामाजिक जीवन के चितेरे थे। निश्चय ही उन्हें हिन्दी साहित्य का मूर्धन्य लेखक स्वीकार किया जा सकता है।

• **जयशंकर प्रसाद**

प्रसाद मूलतः कवि थे किंतु उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानियां और निबंध भी लिखे। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कवि व प्रमुख नाटककार माने जाते थे। कहानीकार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति मिली।

उन्होंने केवल तीन उपन्यास लिखे। कंकाल, तितली और इरावती। इरावती उनका अधूरा उपन्यास है। वे भारत की सांस्कृतिक परंपरा एवं गौरवशाली मर्यादा के पोषक थे किंतु विभिन्न सामाजिक समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी था। *'कंकाल'* में प्रसाद ने समाज के पीड़ित–शोषित वर्गों, यौन दुर्बलताओं, जाति–भेद एवं धार्मिक पाखंडों आदि का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है। *'कंकाल'* के माध्यम से वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी व्यक्ति स्वतंत्र हों और अपने दायित्व का वहन स्वयं करें। 'तितली' उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है। इसमें प्रेम के उच्च आदर्श की स्थापना की गई है।

• **यशपाल**

हिन्दी साहित्य में रूसो, वाल्टेयर और कार्ल मार्क्स के चिंतन से प्रभावित जो समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों की धारा चली, यशपाल उस धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका मूल उद्देश्य सामाजिक वैषम्य का उद्‌घाटन करना है। अतः वे अपनी रचनाओं द्वारा इस विषमता के और पहलुओं (यथा धार्मिक, आर्थिक, नैतिक एवं सामाजिक) पर प्रहार करते चले जाते हैं।

उपन्यासकार के रूप में उन्होंने सामाजिक चेतना को अपने चिंतन का विषय बनाया। इसमें मानव–विकास के चिंतन और चेतना की ऐतिहासिकता विद्यमान है। इसी आधार पर उन्होंने मानव मात्र के धर्म, भाग्य एवं ईश्वर संबंधी विश्वासों पर प्रश्न–चिह्न लगाया और इन्हें पूंजीवादी सत्ता की देन मानकर इनका खंडन किया।

'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। जिनमें यशपाल ने गांधीवादी, पूंजीवादी और उग्रवादी विचारों का विरोध करके समाजवादी चिंतन का समर्थन किया है। *'दिव्या', 'अमिता'* इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'झूठा सच' *(दो भाग)* देश के विभाजन की समस्या पर लिखा एक वृहद् उपन्यास है। इस उपन्यास को यशपाल का कीर्ति–स्तंभ माना जा सकता है। *'मेरी तेरी उसकी बात'* उपन्यास भारत के स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल के सामाजिक, राजनीतिक जीवन पर आधारित है। *'बारह घंटे'* इनका एक भिन्न प्रकार का उपन्यास है।

• **वृंदावन लाल वर्मा**

वृंदावन लाल वर्मा ने प्रेमचंद–युग से उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। हिन्दी में शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना–परंपरा को आरंभ करने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है। उनके सामाजिक उपन्यासों में मानव–मनोविज्ञान और मानवीय संवेदनाओं को समझने एवं अभिव्यक्त करने का प्रयास दिखाई देता है। *'संगम', 'लगन', 'प्रत्यागत'* और *'कुंडली चक्र'* इनके सामाजिक उपन्यास हैं। *'गढ़ कुंडार', 'विराट की पद्मिनी', 'झांसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहल्याबाई', 'माधोजी सिंधिया', 'भुवन विक्रम'* आदि ऐतिहासिक उपन्यास हैं। अधिकांश उपन्यासों में बुंदेलखंड के अतीत के गौरव को चित्रित किया गया है।

• **जैनेंद्र**

जैनेंद्र मूलतः व्यष्टि–बोध के साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रेमचंद की सामाजिक दुनिया से हटकर व्यक्ति–मन की भीतरी गहराइयों में झांका। उनका संपूर्ण कथा–साहित्य व्यक्ति की व्यथा व व्यक्ति के आत्म–पीड़न से पूरित है क्योंकि वे यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति ही वह आधार बिंदु है जिस पर समस्त जीवन की भित्ति स्थापित है। उन्होंने प्रेमचंद–युग में ही हिन्दी उपन्यास को नई दिशा देने का सफल प्रयास किया। उन्होंने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति–मन की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी उपन्यास को सामाजिक यथार्थ ही नहीं मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में भी प्रवेश करने की राह दिखाई। 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'जयवर्धन', 'व्यतीत', 'विवर्त', 'सुखदा', 'मुक्तिबोध', 'दशार्क', 'अनाम स्वामी', 'अनंतर' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

• **अज्ञेय**

अज्ञेय, प्रेमचंद परवर्ती साहित्य के प्रतिनिधि कथाकार हैं। इनका जीवन–दर्शन पाश्चात्य सिद्धांतों विशेषतः फ्रायड और अस्तित्ववाद से प्रभावित है। ये प्रभाव उनके उपन्यासों में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। *'शेखर एक जीवनी'* के प्रकाशन के साथ हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ आया। कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टि से यह परंपरा से हटकर एक नवीन प्रयोग था। इसका मूल उद्देश्य था मुख्य पात्र शेखर की स्वतंत्रता की खोज, व्यक्तित्व की खोज। *'नदी के द्वीप', 'अपने–अपने अजनबी'* इनके अन्य उपन्यास हैं। *'नदी के द्वीप'* में एक व्यक्ति का अपने से साक्षात्कार मुख्य नहीं अपितु अलग–अलग पात्रों के व्यक्तित्व की खोज प्रमुख है। *'अपने–अपने अजनबी'* में दर्शन, मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद का सुंदर समन्वय है। इनके कहानी–सृजन में युग की प्रायः समस्त प्रवृत्तियां अपनी संपूर्ण विशिष्टताओं के साथ प्रतिबिंबित हुई हैं।

• **उपेंद्रनाथ अश्क**

उपेंद्रनाथ अश्क प्रेमचंद के समय से लिखते थे, वह पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में सन् 1933 से हिन्दी में लिखना शुरू किया। गत पचास वर्षों में हिन्दी साहित्य ने जो प्रगति की है उसके विकास की रेखा अश्क जी के साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता, संस्मरण, निबंध सभी विधाओं में लिखकर ख्याति प्राप्त की है।

हिन्दी उपन्यास में निम्न मध्य और मध्यवर्गीय परिवारों के संस्कारों का जैसा यथार्थ चित्रण उपेंद्रनाथ अश्क ने किया है, वह बेजोड़ है। *'गिरती दीवारें'* उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। यह उपन्यास मध्यवर्ग की विवशता का चित्रण करते हुए कई प्रकार की मध्यवर्गीय नैतिक वर्जनाओं को तोड़ने की प्रेरणा देता है। *'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही कंदील'* तथा *'बांधो न नाव इस ठांव'*, इसी कड़ी में लिखे गए उपन्यास हैं जिन्हें *'गिरती दीवारें'* के अगले खंड कहे जाते हैं। *सितारों के खेल, गर्म राख, बड़ी–बड़ी आंखें, पत्थर–अल–पत्थर* इनके अन्य उपन्यास हैं।

• **विष्णु प्रभाकर**

विष्णु प्रभाकर विशिष्ट प्रतिभा संपन्न कलाकार हैं। यद्यपि इन्होंने हिन्दी साहित्य में नाटक, एकांकी आदि लिखकर विशेष ख्याति अर्जित की तथापि वे स्वयं को मूलतः कथाकार ही मानते हैं। पिछले पचास सालों से वे निरंतर लिखते चले आ रहे हैं।

विष्णु प्रभाकर का अपने उपन्यासों में व्यक्त दृष्टिकोण स्वस्थ मानवतावादी एवं सृजनात्मक है। जीवन के स्वस्थ भाव–जगत से कथा–सूत्रों को चुनकर उन्होंने स्वस्थ व्यवहार दृष्टि से ही उसको विकसित किया है। इनके *'तट के बंधन', 'निशिकांत', 'ढलती रात', 'स्वप्नमी'* उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। *'आवारा मसीहा'* नामक रचना में इन्होंने औपन्यासिक शैली में बांग्ला कथाकार शरतचंद्र के जीवन पर प्रामाणिक प्रकाश डाला है। इस रचना के कारण उन्हें हिन्दी जगत में विशेष ख्याति मिली।

• **भीष्म साहनी**

भीष्म साहनी प्रेमचंद की परंपरा के कथाकार हैं। वे सामाजिक सोद्देश्यता और प्रयोजन के साहित्य में विश्वास रखते हैं। किंतु उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त उन्हें नाटक लेखन में भी विशेष सफलता मिली है। *'झरोखे', 'कड़ियां', 'तमस', 'बासंती'* और *'मैय्यादास की माड़ी'* इनके उपन्यास हैं। उपन्यासों में उनकी कला में निरंतर निखार आया है।

• **अमृतलाल नागर**

स्वतंत्रता के पश्चात नवीन युग के उपन्यासकारों में नागर जी का नाम उल्लेखनीय है। इन्हें यथार्थवादी चेतना का प्रमुख उपन्यासकार कहा जाता है। वे व्यक्ति और समाज दोनों को साथ लेकर चलते हैं। इनके उपन्यासों में इतिहास, पुरातत्व और आधुनिकता का सुंदर समावेश मिलता है। *'महाकाल'* बंगाल में पड़ने वाले अकाल की पृष्ठभूमि पर आधारित इनका सर्वप्रथम उपन्यास है। *'नवाबी मसनद'* और *'सुहाग के नूपुर'* इनके दो ऐतिहासिक उपन्यास हैं। *'सेठ बांकेमल'* सामाजिक व्यंग्य है। 'ये कोठेवालियां' वेश्या जीवन पर आधारित है। इसके अतिरिक्त *'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'शतरंज के मोहरे', 'एकदा–नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन'* और *'सात घूंघट वाला मुखड़ा', 'अग्नि गर्भा', 'करवर', 'पीढ़ियां'* आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

• **फणीश्वरनाथ रेणु**

फणीश्वरनाथ रेणु स्वातंत्र्योत्तर काल के सशक्त कथाकार हैं। इन्होंने हिन्दी में सही अर्थों में आंचलिक उपन्यास लिखे। *'मैला आंचल'* और *'परती परिकथा'* में ग्रामांचलों के विशद चित्र देखने को मिलते हैं। *'दीर्घ तपा', 'कितने चौराहे'* और *'जुलूस'* बाद के उपन्यास हैं।

• **नागार्जुन**

नागार्जुन हिन्दी साहित्य के सशक्त कथाकार और कवि हैं। उनका असली नाम वैद्यनाथ मिश्र है। 'नागार्जुन' और 'यात्री' उनके साहित्यिक नाम हैं। उनका जन्म तरौनी (जिला दरभंगा, बिहार) में 1910 में हुआ था। ये प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक और कवि हैं। उनके उपन्यासों में प्रमुख हैं– *रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसर नाथ,*

दुखमोचन और *वरुण* के बेटे। इन औपन्यासिक रचनाओं में नागार्जुन सामाजिक समस्याओं से जूझते दिखाई पड़ते हैं। जनपदीय संस्कृति और लोक–जीवन उनकी कथा–सृष्टि का चौड़ा फलक है। उन्होंने कहीं तो आंचलिक परिवेश में किसी ग्रामीण परिवार के सुख–दुःख की कहानी कही है, कहीं मार्क्सवादी सिद्धांतों की झलक देते हुए सामाजिक आंदोलनों का समर्थन किया है।

- **मोहन राकेश**

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर युग के सजग कलाकारों में प्रमुख हैं। नाटक के क्षेत्र में इन्हें विशेष ख्याति मिली। किंतु इसके साथ ही वे एक सफल उपन्यासकार व कहानीकार भी माने जाते हैं। इन्होंने अपने युग की धड़कन को पहचाना और उसे अपने साहित्य में स्वीकार किया। उनकी रचना दृष्टि का सीधा संबंध अपने आसपास व्यतीत किए जा रहे जीवन के साथ तथा इस जीवन की विडंबनाओं को झेलते हुए व्यक्ति के साथ रहा। किंतु इस व्यक्ति को उन्होंने एक कटी हुई इकाई के रूप में कभी नहीं देखा क्योंकि वह व्यक्ति अपने समाज का एक अविभाज्य अंग है। *'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल'* और *'अंतराल'* इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों का शिल्प एवं कथ्य के धरातल पर अलग–अलग महत्व है।

- **मन्नू भंडारी**

आज की महिला लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में जीवन की जटिल और गहरी सच्चाइयों का साक्षात्कार करने की चेष्टा की। *'आपका बंटी'* और *'महाभोज'*, इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। *'एक इंच मुस्कान'* नामक उपन्यास की रचना इन्होंने अपने पति राजेंद्र यादव के साथ मिलकर की।

1.4 नाटक

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विगत लगभग पांच शताब्दियों से अंतर्धान रहने वाले नाटक को ही हम आधुनिक गद्य के प्रवर्तन में प्रमुख माध्यम के रूप में देखते हैं। यह कुछ विचित्र–सी बात अवश्य है कि संस्कृत साहित्य ही अतुल संपदा है किंतु उसकी उत्तराधिकारिणी हिन्दी में नाटकों की रचना बहुत बाद में हुई। भारतेंदु युग से पूर्व तक तो हिन्दी नाटक परंपरा का प्रायः लोप ही रहा है। इसका मुख्य कारण तो यह है कि जिस काल में हिन्दी का उदय हुआ वह बहुत कुछ हिंसात्मक रहा और लड़ाई की भगदड़ में रंगमंच की स्थापना और उन्नति की संभावना बहुत कम थी। मुसलमानी राज्य में कुछ शांति का समय अवश्य आया किंतु मूर्तिपूजा तथा नकल के विरोधी होने के कारण मुसलमानी सभ्यता में नाटकों के लिए कोई स्थान नहीं था। इसके अतिरिक्त हिन्दी गद्य का रूप भी निश्चित न था। इन सब बातों के अतिरिक्त जीवन में उत्साह की भी कमी थी, इसलिए भी नाटकीय रचना में बहुत कुछ देरी हुई। अंग्रेजी राज्य में जिस रंगमंच की स्थापना हुई, वह उर्दू वालों के हाथ में था। राष्ट्रीय जागृति के साथ ही लोगों का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित हुआ, और हिन्दी में भी नाटक लिखे जाने लगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा था, "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।"

1.4.1 नाटक का उद्‌भव एवं विकास

हिन्दी नाटक के उद्‌भव और विकास निम्न बिंदुओं के अंतर्गत किए गए विश्लेषण के द्वारा समझा जा सकता है–

• पूर्व भारतेंदु युग

हिन्दी नाटकों के उद्‌भव काल को कुछ विद्वानों ने तेरहवीं शती माना है। संवत् 1289 में रचित *'जय सुकुमार रास'* को एक विद्वान ने हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। किंतु अन्य विद्वानों ने इसे मात्र काव्य माना है क्योंकि इसमें नाटकीय तत्वों का सर्वथा अभाव था। महाकवि देव का भी 'देवमाया प्रपंच' नाम का नाटक है, किंतु वह भी एक प्रकार की आध्यात्मिक कविता–मात्र है। (कुछ विद्वानों का मत है कि ये देव नवरत्नों में प्रसिद्ध देव नहीं हैं।) यही हाल ब्रजवासीदास कृत *'प्रबोध चंद्रोदय'* नाटक का है। *'प्रबोध चंद्रोदय'* नाटक का अनुवाद महाराजा जसवंत सिंह ने भी किया था। बनारसीदास जैन ने *'समय–सार'* नामक एक आध्यात्मिक विषय का उत्तम नाटक लिखा है। वास्तव में, यह एक काव्य–ग्रंथ है और इसमें संसार को नाटक का रूपक दिया गया है। इसमें सत्ता भाग को रंगभूमि माना है और जीव को नट तथा नटस्थ परमात्मा को नाटक को देखने वाला माना है।

मध्य काल में, इंग्लैंड आदि देशों में भी नाटकों का आरंभ धार्मिक नाटकों से हुआ था। उनको *'मिस्ट्री प्लेज'* अर्थात रहस्य संबंधी नाटक कहते हैं। इनमें धैर्य, दया, ईर्ष्या, पाप, पाखंड, आदि ही मूर्तिमान होकर नाटकों के पात्रों के रूप में आते हैं। पूर्व– हरिश्चंद्र काल के नाटकों में *'प्रबोध–चंद्रोदय'* नाटक, नेवाजकृत *'शकुंतला नाटक'* और हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' के अनुवाद उल्लेखनीय हैं। महाराज काशीराज की आज्ञा से *'आनंद रघुनंदन'* की रचना हुई किंतु इसमें भी नाटकीय नियमों का पालन नहीं हुआ था। इन नाटकों में छंद का प्राधान्य था। छंद में साधारण जीवन के सब अंगों का वर्णन नहीं हो सकता और उसी अंश में छंद–प्रधान नाटक के परिणाम गिरे रहते हैं।

पात्रों के प्रवेश आदि नियमों का पालन करते हुए सबसे पहला नाटक भारतेंदु जी के पिता बाबू गिरधरदास जी ने 'नहुष' लिखा था। इसमें इंद्र और नहुष की कथा है। कुछ विद्वान 'नहुष' को हिन्दी का पहला नाटक मानते हैं किंतु इस कृति में भी नाटकीय तत्वों का समुचित समावेश न होने के कारण इसे नाटक मानने में संकोच होता है। भारतेंदु युग से पूर्व के नाटकों में *'जानकी रामचरित', 'हनुमन्नाटक', 'रामायण महानाटक', 'प्रद्युम्न विजय'* के नाम भी लिए जाते हैं किंतु इनमें नाट्य विधा का स्पष्टतया निदर्शन किसी में नहीं मिलता। समय के क्रम से रूपक–लक्षणों के अनुकूल नाटक–रचना में आगरा के राजा लक्ष्मणसिंह का नाम भी आता है। उनका 'शकुंतला नाटक' यद्यपि अनुवाद है, तथापि उसमें मूल का–सा सौंदर्य है। उस अनुवाद ने शकुंतला की कीर्ति को कायम रखा।

• भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक साहित्य का प्रवर्तक या जनक कहा जाता है, यह सही भी है। इन्होंने आधुनिक काल की सभी विधात्मक चेतनाओं का श्रीगणेश करने में अपना पूरा–पूरा योगदान दिया। इन विधाओं में स्वयं भारतेंदु ने 'नाटक' को सर्वाधिक प्रश्रय दिया।

भारतेंदु जी ने राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक–सामाजिक नवोत्थान और साहित्यिक चेतना के प्रचार–प्रसार के लिए 'नाटक' को सर्वाधिक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया।

हिन्दी में नाटक के प्रचार–प्रसार हेतु भारतेंदु जी ने बहुविध कार्य किया। हिन्दी पाठकों–दर्शकों के हितार्थ इन्होंने संस्कृत–बांग्ला के श्रेष्ठ नाटकों को, हिन्दी में अनुवाद करके प्रस्तुत किया, स्वयं भी अनेक नाटकों का प्रणयन किया। अपने सहयोगी मित्र–बांधवों से नाटकों का सृजन–लेखन करवाया और नाटकों को लोकप्रिय बनाने के लिए हिन्दी रंगमंच की स्थापना का प्रयास किया। एक प्रकार से इन्होंने नाट्यशाला बनाने के लिए हिन्दी रंगमंच की स्थापना का प्रयास किया। एक प्रकार से इन्होंने नाट्यशाला को पुनर्जीवन प्रदान किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के लिखे हुए 14 नाटक हैं, जिनमें कई प्रहसन भी है। इनमें *'सत्य हरिश्चंद्र', 'मुद्राराक्षस', 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'चंद्रावली'* आदि प्रमुख हैं। भारतेंदु जी ने रूपकों के कई रूपों को– जैसे, नाटक *(सत्य हरिश्चंद्र)*, नाटिका *(चंद्रावली)*, माया *(विषस्य विषमौषधम्)*, प्रहसन *(वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति)* आदि को अपनाया। उन्होंने प्राचीन पद्धति के अनुसार कहीं–कहीं प्रस्तावना और भरत–वाक्य भी लिखे हैं। कहीं अंग्रेजी प्रभाव में आकर नाटक को, जैसे 'भारत दुर्दशा' को दुःखांत बना डाला।

भारतेंदु जी के समय में अन्य लेखकों ने भी नाटकों को अपनाना शुरू कर दिया। उस काल के नाटकों में बाबू तोताराम का *'केटो वृत्तांत'* (एडीसन के अंग्रेजी नाटक का अनुवाद), लाला श्रीनिवास के *'तप्ता संवरण'* और *'रणधीर प्रेम मोहिनी'*, बाबू गोकुलचंद्र का *'बूढ़े मुंह मुंहासे, लोग चले तमाशे'*, बाबू केशवराम कृत *'सज्जाद–सम्बुल'* और *'शमशाद–सौसन'*, गदाधर भट्ट का *'मृच्छकटिक'*, बाबू बद्रीनारायण चौधरी का *'वीरांगना रहस्य'*, अंबिकादत्त व्यास के *'लतिका–नायिका', 'वेणी–संहार'* और *'गो–संकट'*, बाबू राधाकृष्णदास के *'दुखिनी बाला', 'पद्मावती'* और *'महाराणा प्रताप'* मुख्य हैं। अहिन्दी प्रदेश आंध्र में तेलुगू–भाषी श्री पुरुषोत्तम कवि ने भी दक्खिनी हिन्दी में सन् 1885 के आसपास बत्तीस नाटकों की रचना की थी।

• संधि युग

भारतेंदु जी की अल्पायु में ही मृत्यु हो जाने से हिन्दी नाटक की प्रगति को धक्का–सा लगा। जिस श्रम, उत्साह उमंग से हिन्दी में नाटकों का दौर प्रारंभ हुआ था, वह उनके असमय चले जाने से थमा हुआ–सा प्रतीत होने लगा। भारतेंदु जैसे व्यक्तित्व के अभाव में हिन्दी के उदीयमान नाटककारों को उचित दिशा–निर्देश न मिल सका, फलतः मौलिक नाटकों के प्रणयन की गति धीमी पड़ गई। मौलिकता के अभाव में अंग्रेजी, संस्कृत तथा बांग्ला से हिन्दी में अनूदित नाटक खूब लिखे गए। अनूदित नाटकों की इस विपुलता के कारण कुछ विद्वानों ने इस काल को 'अनुवाद युग' का नाम देने का यत्न भी किया है। लाला सीताराम ने संस्कृत के कई नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए तो तोताराम ने बांग्ला से अनेक नाटकों का अनुवाद हिन्दी में किया। रामकृष्ण वर्मा ने बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद करने में विशेष ख्याति प्राप्त की।

हिन्दी नाटकों के विकास में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो जैसे–जैसे समय आगे चलता गया, वैसे–वैसे देवता, राक्षस, गंधर्वादि दैवी पात्रों की कमी होती गई। दैवी

चमत्कार और अद्‌भुत घटनाओं के स्थान में मनुष्यों की बुद्धि और भावों का चमत्कार दिखाया जाने लगा और नाटक का मनुष्य जीवन से विशेष संबंध स्थापित हो गया। दूसरी बात यह है कि क्रमशः पद्य के स्थान में गद्य का प्रवेश होने लगा। नाटकों में पद्य का महत्व दूर करने में द्विजेंद्रलाल राय के अनुवादों ने हिन्दी नाटकों पर अच्छा प्रभाव डाला। ये अनुवाद पं. रूपनारायण पांडेय ने सफलतापूर्वक किए हैं। प्रारंभिक नाटक ब्रजभाषा गद्य में लिखे गए थे। उनके पश्चात गद्य की भाषा तो खड़ी बोली हुई, परंतु पद्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही। आजकल गद्य का प्राधान्य है, अतः पद्य के रूप में भी अब मुख्यतया खड़ी बोली के गीत सुनाई पड़ते हैं। लाघव (प्रयत्न की कमी) की दृष्टि से गद्य और पद्य की भाषा एक ही होना आवश्यक था।

नाटकों के अनुवाद

वर्तमान युग के बीच लाला सीताराम, बी.ए. उपनाम 'भूप' ने बहुत–से संस्कृत नाटकों का अनुवाद कर हिन्दी–भाषा का बड़ा उपकार किया। पंडित सत्यनारायण कविरत्न ने महाकवि भवभूति कृत *'उत्तररामचरित'* और *'मालती–माधव'* के बहुत ही सुंदर और सरल अनुवाद किए। इनमें पद्यांश ब्रजभाषा के हैं, जिनमें मौलिकता का अभाव होता है। जिस प्रकार राजा लक्ष्मणसिंह के *'शकुंतला'* नाटक के अनुवाद द्वारा हिन्दी में कालिदास के यश की रक्षा हुई उसी प्रकार सत्यनारायण जी के अनुवाद द्वारा हिन्दी–भाषियों में भवभूति की कीर्ति अमर हो गई है। *'उत्तररामचरित'* की करुणा को हिन्दी में अवतरित करने में वे पूर्णतया समर्थ हुए हैं। बाबू गंगाप्रसाद, एम.ए. शेक्सपियर के बहुत से नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। मुंशी प्रेमचंद ने भी आधुनिक अंग्रेजी नाटककार गार्ल्सवर्दी के नाटकों का अनुवाद किया, परंतु उनमें वह बात नहीं आ सकी जो उनके उपन्यासों में है।

इस युग में इन अनुवादों के अतिरिक्त बहुत से मौलिक नाटक भी लिखे गए थे। धर्मप्राण की रुचि को ध्यान में रखकर अनेक नाटक लिखे गए। धार्मिक नाटककारों में कथावाचक पंडित राधेश्याम और नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। *'श्रीकृष्ण अवतार', 'रुक्मिणी मंगल', 'वीर अभिमन्यु'* पं. राधेश्याम के नाटकों में अच्छे गिने जाते हैं। बाबू नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाटकों में 'रामायण' और 'महाभारत' नाटक प्रधान हैं। ये नाटक रंगमंच के तो बहुत उपयुक्त हैं, किंतु इनमें साहित्यिकता कम है और उर्दू का पुट भी है। हां, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इनके द्वारा हिन्दी को रंगमंच पर स्थान मिल गया और उर्दू का बोलबाला घटने लगा। बाबू हरिकृष्ण जौहर के सामाजिक नाटक अच्छे हैं। कृष्णचंद्र के नाटकों में राजनीति का पुट है।

• प्रसाद युग

भारतेंदु जी के असमय अवसान से हिन्दी में मौलिक नाटकों के लेखन में अवरोध–सा आ गया था। यद्यपि, अनूदित नाटकों में कमी न थी। नाट्य शिल्प में जैसा विकास और भावबोध में जैसा विस्तार अपेक्षित था, वह भारतेंदु जी के अवसान के बाद और जयशंकर प्रसाद के नाट्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व नहीं आ सका था। भारतेंदु युग में हिन्दी नाटकों की जो शैशवावस्था थी, उसे यौवन का मार्दव प्रदान करने में प्रसाद जी की प्रतिभा अग्रगण्य रही। प्रसाद जी इस क्षेत्र में युगांतरकारी प्रतिभा लेकर आए। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से

हिन्दी नाटकों को नवोत्कर्ष और प्रभविष्णुता प्रदान की। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट आदि इस युग के चर्चित नाटककार थे।

जयशंकर प्रसाद जैसी प्रतिभा का अवतरण युगों में एकाध बार ही होता है। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में उनका कार्य सर्वाधिक सराहनीय समझा जाता है। उन्होंने हिन्दी नाटकों को भारतीय संस्कृति, देश के गौरवशाली इतिहास, मानवीय संवेदनाओं से जिस ढंग से जोड़ा, उससे हिन्दी नाटकों को भव्यता और उत्कर्ष मिला। उनके *'विशाख', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूंट', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी'* नाटकों ने हिन्दी नाटकों को नवोत्कर्ष प्रदान किया।

प्रसाद जी ने नाटक अधिकतर ऐतिहासिक हैं। *'जनमेजय का नागयज्ञ'* पौराणिक है। जिस प्रकार बांग्ला के द्विजेंद्रलाल राय ने मुगलकालीन भारत का चित्र उपस्थित किया है, उसी प्रकार प्रसाद जी भारतीय गौरव–गाथा गान में विशेष समर्थ हुए हैं। उन्होंने विशेष रूप से बौद्धकालीन भारत के इतिहास को अपनाया है। अन्य नाटककारों ने जहां हिंदुओं के जातीय अभिमान तथा मुसलमानों से लोहा लेने की बात का वर्णन किया है, वहां प्रसाद जी ने हिंदुओं की सभ्यता एवं नैतिक श्रेष्ठता दिखलाने का प्रयत्न किया है। उनके नाटकों को पढ़कर यह प्रतीत होने लगता है कि प्राचीन काल में भी आजकल जैसी व्यवस्था थी। उन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं को अपने समय के साथ जोड़ा है, अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का प्रतिबिम्ब इन रचनाओं में दिखलाया है। प्रसाद जी के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता पर्याप्त मात्रा में है, और कहीं–कहीं बड़े सुंदर अंतर्द्वंद्व दिखलाए गए हैं। उनके नाटकों में प्रसंगवश आए हुए गीत साहित्य की निधि हैं। किंतु उनके नाटक कलामय होते हुए भी क्लिष्ट हैं, अतः वे साधारण रंगमंच के योग्य नहीं हैं, उनके लिए विशेष रंगमंच चाहिए। प्रसाद जी के नाटकों में प्रसाद गुण की कमी भी है। उनके साधारण पात्र भी संस्कृत–गर्भित भाषा बोलते हैं और दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन करते हैं। प्रसाद जी के प्रधान पात्रों में एक दार्शनिक त्याग की भावना रहती है और उन पर प्रसाद जी के नियतिवाद की छाप रहती है।

1.4.2 प्रमुख नाटककार

जयशंकर प्रसाद के पश्चात नाटक साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प्राच्य एवं पाश्चात्य, दोनों शैलियों का यथायोग्य प्रयोग किया गया। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर नाटकों की रचना की गई वैसे अधिकतर नाटकों की कथावस्तु का आधार इतिहास तथा पौराणिक आख्यान नहीं थे, किंतु समसामयिक समाज के अनेक प्रश्नों को लेकर भी अनेक नाटकों की रचना की गई कुछ प्रसिद्ध नाटककारों का परिचय इस प्रकार है :

1. **पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र** – मिश्र जी के *'राजयोग', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिंदूर की होली'* आदि नाटक समस्यात्मक नाटकों में गिने जा सकते हैं। इन्होंने समाज की व्यापक समस्याओं को न लेकर व्यक्तियों की समस्याएं ली हैं। इनमें नारी की समस्या को तो प्राधान्य मिला है, किंतु व्यक्ति की समस्याएं जाति की ही समस्याएं बन जाती हैं। इनका *'संन्यासी'* और *'राक्षस का मंदिर'* इसके उदाहरण हैं। उन्होंने *'गरुड़ध्वज', 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध', 'चक्रव्यूह', 'वितस्ता की लहरें',*

'अशोक', *'नारद की वीणा'*, *'अश्वमेघ'*, *'मृत्युंजय'*, जैसे ऐतिहासिक तथा पौराणिक विषयों से संबंधित अच्छे नाटक लिखे हैं। *'अपराजित'* और *'कल्पतरु'* सामाजिक जीवन को लेकर लिखे गए हैं। अपने नाटकों की भूमिकाओं में इन्होंने अपनी नाटक–रचना संबंधी दृष्टि को स्पष्ट किया है। प्रसाद के नाटकों की भावात्मकता के विरुद्ध मिश्र जी ने बुद्धिवाद को प्रश्रय दिया। इनके विचार से, भावना या कल्पना की अपेक्षा बुद्धि और तर्क से यथार्थ की अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली ढंग से हो सकती है। अंग्रेजी के नाटककार इब्सन का प्रभाव मिश्र जी पर पड़ा है।

2. **सेठ गोविंददास** – सेठ जी ने *'ऊषा'*, *'हर्ष'*, *'कर्तव्य'*, *'प्रकाश'*, *'नवरस'*, *'शशीगुप्त'*, *'मुलीनता'*, *'शेरशाह'* आदि कई नाटक लिखे हैं। इनका *'शेरशाह'* नाटक इस दृष्टि से विशिष्ट है कि उसमें हिंदू–मुसलिम एकता का प्रभावपूर्ण अंकन है। इसी प्रकार *'कुलीनता'* नाटक में कुलगत प्रतिष्ठा की निस्सारता व्यक्त की गई है। सेठ जी का लिखा 'चतुष्पथ' नामक एकपात्र वाले संवादात्मक नाटकों का संग्रह निकला है। ऐसे नाटकों में केवल एक ही पात्र रहता है। सेठ जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी विषयों पर नाटक लिखे हैं। इनका अतुकांत पद्य में भी *'स्नेह या स्वर्ग'* नामक एक छोटा–सा नाटक है। परंतु वह यूनानी कथा का भारतीय अनुकरण है। सेठ जी ने अपने जीवन काल में लगभग 100 नाटक लिखे हैं। संख्या की दृष्टि से उनके नाटक संभवतया सबसे अधिक हैं। इनकी रचनाओं में गांधीवाद तथा मानवतावाद के स्वर सर्वत्र सुनाई देते हैं।

3. **हरिकृष्ण 'प्रेमी'** – प्रेमी जी ने अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखकर अच्छी ख्याति प्राप्त की। प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास का हिंदू काल चुना तो प्रेमी जी ने मुस्लिम काल। उनके *'रक्षाबंधन'*, *'जौहर'*, *'शिवसाधना'*, *'उद्धार'*, *'कीर्ति–स्तंभ'*, *'विषपान'*, *'स्वप्नभंग'*, *'प्रतिशोध'*, *'आन का मान'*, *'सांपों की सृष्टि 'आहुति'* आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। प्रेमी जी के अधिकांश नाटक राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हैं। उनमें (विशेषतः *'रक्षाबंधन'*, *'आन का मान'* तथा *'स्वप्नभंग'* में) हिंदू–मुसलमानों में पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। इनके नाटकों में रंगमंचीयता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। इनके नाटकों में त्याग, बलिदान और राष्ट्रीयता के स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुए हैं।

4. **गोविंदवल्लभ पंत** – कला तथा रंगमंच की दृष्टि से पंत जी ने सफल नाटकों की रचना की है। इनके *'वरमाला'*, *'राजमुकुट'*, *'अधूरी मूर्ति'*, *'अंगूर की बेटी'*, *'विषकन्या'* और *'सुजाता'* आदि प्रसिद्ध नाटक हैं। इनके नाटकों की कथावस्तु पौराणिक तथा ऐतिहासिक है। *'अंगूर की बेटी'* सामाजिक नाटक है। इनके नाटकों में सामयिक जीवन की समस्याओं के प्रति भी सजग दृष्टि मिलती है। रंगमंचीयता की दृष्टि से भी इनके नाटक अभिनेय कहे जा सकते हैं। इनके नाटकों की भाषा प्रायः सुबोधगम्य है। शिल्प की दृष्टि से इनके सभी नाटक प्रशंसनीय हैं।

5. **उदयशंकर भट्ट** – भट्ट जी ने कई नाटक लिखे हैं। इनके विषय अधिकतर ऐतिहासिक व पौराणिक हैं। भट्ट जी के ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों में *'सगर*

विजय', 'अंबा', 'विक्रमादित्य', 'दाहर या सिंध विजय', 'मत्स्यगंधा', 'विश्वामित्र', 'शक विजय' प्रमुख हैं। भट्ट जी का *'कमला'* नामक नाटक आधुनिक काल से संबंधित है। इसमें राजनीति के साथ रोमांस भी है। इनके *'मत्स्यगंधा'* और *'विश्वामित्र'* दोनों गीत–नाट्य हैं। इन्होंने *'राधा'* नामक एक भाव–नाट्य भी लिखा है। इनके *'एकला चलो रे'* और *'कालिदास'* नाम के रेडियो नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। इनके *'समस्या का अंत'* और *'धूपशिखा'* नामक दो एकांकी संग्रह भी निकले हैं। इनके 'कुमार संभव' में आचार और कला की समस्या है, जिसमें आपने सरस्वती द्वारा कला का ही समर्थन कराया है।

6. **उपेंद्रनाथ 'अश्क'**– प्रसादोत्तर काल में प्रमुख सूत्रधारों में *'अश्क'* भी एक हैं। इन्होंने प्रेरणा तो पाश्चात्य नाटक साहित्य से प्राप्त की, किंतु निजी अनुभव और तथ्यपरक दृष्टि से उसे अपना बना लिया। इनका *'जय पराजय'* नाटक ऐतिहासिक है। यह हमको राजपूत–काल की ओर ले जाता है। 'अश्क' जी के सामाजिक नाटकों में *'स्वर्ग की एक झलक'* नामक नाटक बिल्कुल आधुनिक ढंग का है। इसमें स्त्री–शिक्षा और पारिवारिक जीवन की समस्या है। इनके अतिरिक्त *'छठा बेटा', 'कैद और उड़ान', 'अलग–अलग रास्ते', 'बड़े खिलाड़ी'* आदि नाटक भी उल्लेखनीय हैं। *'चरवाहे'* व *'नए–पुराने'* उनके अन्य नाटक हैं। *'देवताओं की छाया'* में इनके एकांकी नाटकों का संग्रह है।

7. **डॉ. रामकुमार वर्मा** – वैसे तो वर्मा जी ने एकांकी लेखन में विशेष ख्याति पाई है, किंतु उन्होंने कुछ अनेकांकी नाटक भी लिखे हैं जिनमें *'विजय गर्व', 'कला और कृपाण', 'अशोक का शोक', 'अंधकार'* आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके *'संत तुलसीदास', 'जय वर्द्धमान'* तथा *'अग्निशिखा'* ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर अंकित नाटक हैं।

8. **डॉ. सत्येंद्र** – महाराज छत्रसाल के संबंध में सत्येंद्र जी ने *'मुक्तियज्ञ'* नाम का वीर–रसात्मक नाटक लिखा है। इनके *'कुणाल', 'विक्रम का आत्ममेध', 'प्रायश्चित'* ऐतिहासिक नाटक हैं। ये नाटक अभिनय योग्य तो हैं ही, साहित्य की दृष्टि से भी उत्तम बन पड़े हैं।

9. **वृंदावनलाल वर्मा** – इनका *'पूर्व की ओर'* नाटक निकोबार (नागद्वीप) और बोर्नियो (वरुणद्वीप) की संस्कृति पर आधारित अपने ढंग का विलक्षण नाटक है। कथानक कल्पित है, किंतु उसका आधार ऐतिहासिक है। *'हंस–मयूर'* में भारतीय संस्कृति की व्याख्या है। वर्मा जी के अन्य नाटकों में *'पीले हाथ', 'झांसी की रानी', 'राखी की लाज', 'कनेर', 'सेगुन', 'बांस की फांस', 'धीरे–धीरे'* आदि उल्लेखनीय हैं।

10. **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल** – आधुनिक नाटक–रचना तथा नाट्य–समालोचना के क्षेत्र में कार्य महत्वपूर्ण है। अभिनेता की दृष्टि से इनके नाटक बहुत ही सफल हुए हैं। वर्तमान समाज के कुछ प्रश्न इनके नाटकों में उभारे गए हैं। *'मादा कैक्टस'* प्रतीकात्मक नाटक है। इसमें स्त्री और पुरुष पात्रों के चेतन मन तथा अचेतन मन के अंतर्द्वंद्व का प्रभावी अंकन हुआ है तथा समाज और व्यक्ति के संबंधों की

मनोवैज्ञानिक व्याख्या हुई है। *'अंधा कुआं'* ग्रामीण परिवेश लिए हुए है। नाटक *तोता–मैना* लोकगाथात्मक चरित्रों पर आधारित है। इनके *'दर्पण', 'सुंदररस'* आदि अन्य नाटक भी प्रसिद्ध हैं।

11. **जगदीशचंद्र माथुर** – इनका *'कोणार्क'* अपने ढंग की एक विशिष्ट रचना है। ऐतिहासिक तथ्यों तथा काल्पनिक प्रसंगों के सम्मिश्रण से यह अत्यंत प्रभावोत्पादक बन गया है। जैसा नाम से ही स्पष्ट है, यह नाटक उड़ीसा राज्य के समुद्र तट पर स्थित तथा अपनी अद्‌भुत शिल्पकला के लिए विख्यात कोणार्क मंदिर के निर्माण की घटना पर आधारित है। इनके *'शारदीया', 'दशरथ नंदन', 'पहला राजा'* आदि अन्य नाटक हैं।

12. **मोहन राकेश** – मोहन राकेश का जीवन बहुत कम अवधि का था। किंतु इस अवधि में ही इनकी ख्याति कथा–साहित्य तथा नाटकों के कारण व्यापक हो गई। इनके नाटकों का मंचन बड़ी सफलतापूर्वक अब भी होता रहता है। संस्कृत के प्रसिद्ध बौद्ध कवि अश्वघोष विरचित *'सौन्दरनन्द'* पर आधारित इनका नाटक *'लहरों के राजहंस'* एक श्रेष्ठ रचना है। गौतम बुद्ध के भाई नंद के हृदय में अपनी पत्नी सुंदरी के प्रति अदम्य आकर्षण है और तथागत के उपदेशों का अनुसरण करने की आकांक्षा भी। इनका अंतर्द्वंद्व नाटक में चित्रित है। *'आषाढ़ का एक दिन'* संस्कृत में मेघ–संदेश काव्य में प्रतिफलित कालिदास की मनःस्थिति पर आधारित नाटक है। इनका *'आधे–अधूरे'* नाटक बहुत प्रसिद्ध है।

अन्य नाटककार

कथाकार प्रेमचंद का *'कर्बला'* नाटक भी इस काल में लिखा गया। सुदर्शन जी ने भी कई उत्तम नाटक लिखे हैं। उनमें *'अंजना'* ने बहुत ख्याति पाई है। आपने *'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट'* नाम का एक प्रहसन भी लिखा है। आपके 'भाग्यचक्र' में प्रेम और वैराग्य का संघर्ष है। इसमें भौतिक आघात द्वारा स्मृति–भ्रंश तथा उसकी पुनर्जागृति की मनोवैज्ञानिक समस्या है। रामवृक्ष बेनीपुरी के *'अंबपाली'* तथा चंद्रगुप्त विद्यालंकार के *'अशोक'* और *'रेवा'* नाटकों में इतिहास की सरस झांकी है। भगवती प्रसाद बाजपेयी के *'छलना'* नाम के नाटक में आधुनिक युग की छाप है, उसमें थोड़ा रूपक भी है।

माखनलाल चतुर्वेदी का *'कृष्णार्जुन युद्ध'*, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' का *'भीष्म'*, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का *'महात्मा ईसा'*, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' के *'समर्पण'* और *'प्रताप–प्रतिज्ञा'*, आनंदप्रसाद खत्री का *'गौतम बुद्ध'*, कैलाशनाथ भटनागर का *'कुणाल'*, परिपूर्णानंद वर्मा का *'रानी भवानी'*, रेवतीशरण वर्मा का *'दीपशिखा'*, अमृतराय का *'आज अभी'*, अमृतलाल नागर का *'युगावतार'*, विनोद रस्तोगी के *'भीष्म पितामह'* और *'नए हाथ'*, गिरिजाकुमार माथुर का *'जनम–कैद'*, गिरिराज किशोर का *'नरमेध'*, श्याम उमाठे के *'औरत', 'प्राण और पत्थर'*, सुरेंद्र वर्मा का *'द्रौपदी'*, शोभना भूटानी का *'शायद हां'*, आर.जी. आनंद का *'भूचाल'* आदि विख्यात हुए हैं।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक और रंगमंच का अच्छे स्तर पर विकास हुआ है। दिल्ली में स्थापित 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' तथा कोलकाता, मुंबई आदि नगरों में

स्थापित नाटक केंद्रों से हिन्दी नाटक की रचना और मंचन के लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। लक्ष्मीनारायण लाल का *'मादा कैक्टस'* और *'रातरानी'*, धर्मवीर भारती का *'अंधा युग'* आदि कई महत्वपूर्ण नाटक इसी प्रोत्साहन के फलस्वरूप रचे गए। बिहार के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने भी अच्छे नाटकों का सृजन किया है। वर्तमान युग में जगदीशचंद्र माथुर का *'पहला राजा'* डॉ. लाल का *'करफ्यू'*, *'मि. अभिमन्यु'*, ज्ञानदेव अग्निहोत्री का *'शुतुरमुर्ग'*, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का *'बकरी'*, भीष्म साहनी का *'कबिरा खड़ा बाजार में'*, शंकर शेष का *'एक और द्रोणाचार्य'* आदि महत्वपूर्ण नाटक हैं। नवीनतम नाटककारों में लक्ष्मीकांत वर्मा, सुरेंद्र वर्मा, मुद्राराक्षस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में साहित्यिक उत्कर्ष के साथ–साथ रंगमंच की दृष्टि से आवश्यक शिल्प का भी समावेश है। आधुनिक जीवन के यथार्थ को प्रकट करने वाले इन नाटकों से हिन्दी साहित्य की समृद्धि बढ़ी है।

संस्कृत के कई नाटकों का अनुवाद हिन्दी में पहले से ही होता रहा है। बीसवीं शताब्दी में संस्कृत के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं से एवं विदेशी भाषाओं से भी उत्तम नाटकों का रूपांतरण या अनुवाद हिन्दी में होता रहा है। संस्कृत के कालिदास, भास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष आदि के नाटकों के अनुवाद हिन्दी में उपलब्ध हैं। मोहन राकेश द्वारा अनूदित *'अभिज्ञान शाकुंतलम्'* और *'मृच्छकटिक'* के अनुवादों में नए प्रतिमान स्थापित हुए हैं। बांग्ला के प्रसिद्ध नाटकों में उत्पल दत्त कृत *'छायानट'*, बादल सरकार के *'एक इंद्रजीत'*, *'बाकी इतिहास'*, *'सारी रात'*, *'पागल घोड़ा'*, संतु बोस कृत *'घटना–दुर्घटना'*, मोहित चटर्जी कृत *'निषाद'* आदि के सफल अनुवाद हिन्दी में किए गए हैं। इनके अनुवादक हैं– कृष्णकुमार, प्रतिभा अग्रवाल, रामचंद्र कात्यायन, नेमिचंद्र जैन आदि। मराठी के विजय तेंदुलकर कृत नाटक *'पंछी ऐसे आते हैं'* का अनुवाद केशवचंद वर्मा ने किया है। कन्नड़ के गिरीश कर्नाड कृत नाटक *'हयवदन'* का बी.वी. कारंत द्वारा किया गया अनुवाद उपलब्ध है।

अंग्रेजी के शेक्सपियर आदि के कई नाटकों के अनुवाद रांगेय राघव, हरिवंश राय बच्चन आदि ने किए हैं। इधर अनेक विदेशी नाटकों का हिन्दी में रूपांतरण हुआ है और उनका सफल प्रदर्शन भी हुआ है। मैक्सिम गोर्की के नाटक का अनुवाद *'तलछट'*, टैनेसी विलियम्स की कृति का अनुवाद *'कांच के खिलौने'*, जे.बी. प्रीस्टले की कृति का अनुवाद *'आवाज'*, सैमुअल बैकेन के नाटक का अनुवाद *'इंतजार'*, आर्थर की कृति का अनुवाद *'एक सेल्समैन की मौत'* इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

कथा और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी नाटकों का विकास बहुमुखी हो रहा है तकनीक की दृष्टि से नाटक में नित्य नए प्रयोग हो रहे हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, इलाहाबाद आदि नगरों मे नाटकों को अलग–अलग प्रेक्षागृहों में खेले जा रहे हैं। प्रबुद्ध साहित्यकारों और रंगकर्मियों ने छोटे–बड़े नगरों में अपनी–अपनी नाट्य मंडलियां स्थापित करके नाटकों का मंचन करने के सफल प्रयास भी किए हैं। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि टी.वी. और सिनेमा ने मंचीय नाटकों के विकास में रोड़े अटकाए हैं। फलस्वरूप नाटकों के लेखन और उनके मंचन में वांछित प्रगति नहीं हो पा रही है।

नवीन प्रभाव

आजकल नाटकों पर इब्सन या बर्नार्ड शॉ आदि का अधिक प्रभाव है। संक्षेप में, हम आधुनिक नाटकों की मूल प्रवृत्तियां इस प्रकार बतला सकते हैं :

1. प्रसाद जी के युग में चार या पांच अंक वाले नाटक लिखे गए लेकिन बाद में उत्तरोत्तर नाटक आकार में छोटे होते गए। बाद के नाटक दो या तीन अंक से अधिक नहीं होते।
2. वे प्रायः वर्तमान समय से ही संबंध रखते हैं, और उनमें वस्तुवाद का प्राधान्य है।
3. वर्तमान नाटक अधिकतर मनोवैज्ञानिक और समस्यात्मक होते जाते हैं।
4. उनमें रंगमंच के संकेतों का बाहुल्य होता है; यहां तक कि कुर्सी, मेज, तस्वीर आदि का स्थान निर्दिष्ट कर दिए जाते हैं।
5. संकलन–त्रय के पालन करने की ओर भी उनकी प्रवृत्ति हो चली है। परंतु कुछ नाटककार तकनीक के कुछ नए प्रयोगों से अब संकलन–त्रय को आवश्यक नहीं मानते।
6. नाटकों के कथ्य और शिल्प के नए प्रयोग देखने को मिल रहे हैं।
7. भाषा भी अधिकाधिक सुबोध होती गई है।
8. मंच में विद्युत प्रभाव आदि की नई–नई तकनीक का प्रयोग भी होता गया है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि नाटक विधा निरंतर परिवर्तनशील रही। इसकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती गई है।

2.0 परिचय

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' अपनी विषयवस्तु के प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण और अबाध पठनीयता के लिए जाना जाता है। मध्य प्रदेश के भानपुरा नगर में 1931 में जन्मी मन्नू भंडारी को श्रेष्ठ लेखिका होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में कलम चलाई है। नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के दलदल में फंसे आम आदमी की पीड़ा और दर्द को उद्घाटित करने वाले उनके उपन्यास 'महाभोज' (1979) को हिन्दी के सफलतम उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि राजनीतिक कुचक्रों पर महिलाएं नहीं लिखतीं, महाभोज उपन्यास इस धारणा को तोड़ता है। यही वजह है कि मन्नू भंडारी जब महाभोज लिख डालती हैं तो लोगों का ध्यान किताब पर फौरन चला जाता है।

जनतंत्र की विडंबना व राजनीति के प्रति मानवीय चरित्र को 'महाभोज' का आधार बनाया गया है। यह आजाद भारत की भ्रष्ट, सत्तालोलुप एवं बंजर राजनीति की प्रतिनिधि कथा है। उपन्यास का ताना–बाना सरोहा नामक गांव के इर्द–गिर्द बुना गया है, जहां विधानसभा की एक सीट के लिए चुनाव होने वाला है। यहां मूल्यों व संभावनाओं की लाशों पर राजनीति के गिद्धों का जमघट है।

निःसंदेह कहा जा सकता है कि 'महाभोज' एक सशक्त कृति है क्योंकि राजनीति में चल रही दोगली नीति, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, अमानवीकरण, तिकड़मबाजी, दल–बदल नीति और इसके घिनौनेपन को मन्नूजी ने बखूबी उजागर किया है।

इस इकाई में हम महाभोज उपन्यास में मौजूद राजनीतिक चेतना व दलित चेतना का अध्ययन करेंगे। साथ ही औपन्यासिक तत्वों के आधार पर उपन्यास का समीक्षात्मक अवलोकन भी करेंगे।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' की विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- 'महाभोज' में उपलब्ध राजनीतिक चेतना का विश्लेषण कर पाएंगे;
- 'महाभोज' में विवेचित दलित चेतना के विषय में जान पाएंगे;
- औपन्यासिक तत्वों के आधार पर 'महाभोज' की समीक्षा कर पाएंगे।

2.2 'महाभोज' में राजनीतिक चेतना

मन्नू भंडारी स्वातंत्र्योत्तर काल की एक संवेदनशील लेखिका हैं। उन्होंने देश व समाज में घिनौनी राजनीति से उत्पन्न समस्याओं को लेकर अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने अपनी अलगाव कहानी के कथ्य को 'महाभोज' उपन्यास में रूपायित किया है। इस उपन्यास में उन्होंने राजनीतिक समस्याएं, जो समाज को प्रभावित कर उसे किस प्रकार तोड़ती हैं इसको विशेष रूप से उजागर किया है। मन्नू भंडारी वर्ग भेद, आर्थिक शोषण, शोषक–शोषित नीति की विरोधक और वर्गहीन समाज व्यवस्था की पक्षधर हैं। 'महाभोज' में लेखिका ने आर्थिक शोषण और विषमता की समस्या को स्पष्टतः उठाया है।

हमारे देश की राजनीति पर गांधीवाद तथा मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव रहा है। गांधी जी के जीवन दर्शन को ही गांधीवाद कहा जाता है। गांधीवाद के सैद्धांतिक पक्ष का चित्रण अनेक उपन्यासों में मिलता है। मन्नू भंडारी का 'महाभोज' तो गांधीवादी धरातल पर उतारा गया उपन्यास है। उपन्यास के प्रमुख पात्र दा साहब गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित व्यक्ति हैं, 'सादा जीवन उच्च विचार' उनका सिद्धांत है। वे अहिंसा और कर्म की प्रधानता मानते हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों को जिन प्रमुख राजनीतिक विचारधाराओं ने प्रभावित किया है उनमें साम्यवाद का स्थान महत्वपूर्ण है। कार्ल मार्क्स ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। इसे 'मार्क्सवाद' भी कहते हैं। मार्क्सवाद दो ही वर्गों को मानता है– शोषक और शोषित। मन्नू भंडारी के 'महाभोज' में साम्यवादी विचारधारा का भी चित्रण मिलता है। लेखिका के शब्दों में–

"खड़ा हूं आप लोगों की लड़ाई लड़ने के लिए, बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की नहीं है... यह सब आप लोगों के जिंदा रहने का सवाल है... अपने पूरे हक के साथ... जिंदा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं... आपके जिंदा रहने के हक की मौत है। आपका यह हक जरा से स्वार्थ के लिए गांव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया है... और यही हक मुझे आपको वापस दिलाना है। जुलूस ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिए हैं, इसलिए मैं लडूंगा आपकी यह लड़ाई। आखिरी दम तक लडूंगा।"

राजनीति जनकल्याण, जन–पालन तथा जनता को समुचित रूप में शासित करके उनके अवैध, अनुचित, भ्रष्ट आचरण पर प्रतिबंध लगाकर उन्हें सत्य की ओर अग्रसर करती है। राजनीति और मनुष्य का घनिष्ठ संबंध है। जब भी राजनीतिक मूल्यों में बदलाव तथा विघटन होता है, तभी वह समस्या की पृष्ठभूमि तैयार करके समस्त समाज को अनैतिकता के कगार पर खड़ा करके उसे नुकसान पहुंचाता है। देश और समाज के भविष्य को काल–कोठरी में बंद कर देता है। आज यही स्थिति हमारे देश में दिखाई देती है। देश की आजादी से पहले समाज में राष्ट्रीयता सर्वोपरि रही है। हमारे राजनेताओं ने भारत की भूमि को जन्म देने वाली मां के समान पवित्र मानकर उसका ऋण चुकाने में स्वयं को स्वाहा कर दिया। राजनेता जनता के लिए देवता बन गए, उन्होंने जनता में मानवीय मूल्यों को जगाया परन्तु स्वतंत्रता के बाद राजनीति में नैतिक मूल्यों का पतन हुआ। इस संबंध में डॉ. रमेश देशमुख का कथन सार्थक है, "कहो नीति, सुनो नीति, लिखो नीति, पर करो अनीति यही आज की राजनीति।"

आज राजनीति प्रजातंत्र तथा जनतंत्र की राजनीति नहीं बल्कि चुनाव और वोट की राजनीति बन गई है। अब जनता के सभी मुद्दे चाहे वे रोटी के हों, चाहे धर्म के, वोट की नीति से तय होने लगे हैं। वोट धन, शक्ति और सत्ता के बल पर खरीदे जा रहे हैं। अब राजनेता जन सेवक नहीं, जन शोषक बन गए हैं। डॉ. गंभीर एस. के शब्दों में– "आधुनिक राजनीति कुर्सी का पर्याय बन गई है। विधायक कुर्सी के मोह से इस तरह ग्रसित हो रहे हैं कि अब स्वतंत्रता उनका जन्मसिद्ध अधिकार न होकर कुर्सी उनका जन्मसिद्ध अधिकार हो गई है।" कुर्सी हथियाने और उसे टिकाने की होड़ में इन राजनेताओं ने न्याय, प्रशासन, कानून, पत्रकारिता सभी को अपनी रखैल बना रखा है। सभी के सभी साधारण जनता का शोषण करके पालित–पोषित हैं। इस संबंध में डॉ. शशि जेकब का कथन विचारणीय है, "प्रजातांत्रिक मूल्य का पतन हो चुका है। भारत की निरीह जनता शोषण का शिकार हो रही है।"

इस प्रकार राजनीतिक मूल्यों की गिरावट ने राजनीतिक क्षेत्र के अलावा सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। आज हमारा देश एवं समाज भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, शोषण, धोखाधड़ी, गुंडागर्दी, बलात्कार, लूट–खसोट, दोगली नीति आदि का शिकार होकर तड़प रहा है। वर्तमान स्थिति में राजनीति में नैतिक मूल्यों का पतन होकर अनेक समस्याएं उभरी हैं। उनके पीछे मुख्य कारण हैं– पद प्राप्त करने की लालसा, नैतिक मूल्यों का विघटन, शक्ति, सत्ता व धन का अहंकार, व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति की भावना, जोड़–तोड़ की नीति, दबाव तंत्र, आदर्शहीनता एवं दोगली नीति, आर्थिक स्थिति, धन की लालसा, दुर्बल व कमजोर जनता। इन प्रवृत्तियों के कारण राजनीति अनीति का शिकार होकर अनेक समस्याओं को पैदा कर रही है।

हमारे देश में पहले जहां राजा प्रजा का पालक और प्रजा राजा की संतान मानी जाती थी आज के परिवेश में कुर्सीधारी ही जनता के सबसे बड़े शोषक बने हुए हैं। वर्तमान राजनीति में शुतुरमुर्ग–प्रवृत्ति की अधिकता है। परंपरागत नैतिक मूल्यों को नेताओं ने बुरी तरह तोड़कर राजनीति को अनीति का अखाड़ा बना दिया है। पद और सत्ता हथियाना ही आज के नेताओं का लक्ष्य रह गया है।

राजनीति के घिनौने रूप का ब्यौरा प्रस्तुत करना ही मन्नू भंडारी का मंतव्य नहीं है बल्कि चुनाव के दौरान हरिजन युवक बिसू की मौत, भूत और वर्तमान राजनेताओं के लिए 'महाभोज' बन जाती है। उसी घटना को लेकर राजनीतिक हथकंडों का प्रयोग करके भोले–भाले लोगों को कैसे गुमराह किया जाता है... इस सिलसिले में नेताओं के भोज्य बने सभी कारणों को मन्नू भंडारी ने सामने रखा है।

'महाभोज' उपन्यास में स्वतंत्र भारत के राजनीतिक माहौल की सच्चाई का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास 1976 से 1979 के मध्य लिखा गया है। सन् 1975 में श्रीमती इंदिरा गांधी के शासनकाल में आपातकाल की घोषणा कर दी गई। इस दौरान जनता पर अनेक अत्याचार हुए। उसके बाद जनता पार्टी की सरकार बन गई लेकिन भ्रष्टाचार और शोषण का सिलसिला बना रहा। 'महाभोज' उपन्यास में इस स्थिति पर प्रकाश डाला गया है–

"हमने तो सबके देख लिया साहब, एक वह, शराबी सरकार थी, एक वह पिशाबी सरकार... ससुरे सब एक से...।" इस पार्टी के शासनकाल में भी नैतिक–अनैतिक हथकंडे अपनाए गए, मंत्री पद के मोलभाव सरेआम होने लगे, आदर्श की भाषा बोलने वालों को पदच्युत कराया गया। दल–बदलुओं का बाजार गर्म होने लगा, कुर्सी हथियाने के लिए नैतिक मूल्यों को ताक पर धर दिया गया, जनता की जबान पर लगाम लगा दिया गया, इस स्थिति का यथावत् चित्रण 'महाभोज' उपन्यास तथा नाट्य–रूपांतर 'महाभोज' में है। इस संबंध में स्वयं मन्नू भंडारी का कथन है, "महाभोज आज के राजनैतिक माहौल को उजागर करने वाला स्थिति प्रधान उपन्यास है।... हर प्यादे की लड़ाई फर्जी बनने की है और लड़ाई की इस बिसात ने समाज के हर वर्ग को धीरे–धीरे चंगुल में कस लिया है।... यह उपन्यास स्थिति प्रधान भी है और यथास्थिति के विरुद्ध विद्रोह भी।"

सत्ता का लोभ व्यक्ति को कितना गिरा देता है इसका यथार्थ दस्तावेज 'महाभोज' उपन्यास है। डॉ. अनीता राजूरकर ने लिखा है, " 'महाभोज' उपन्यास भ्रष्ट राजनीति का दर्पण है।" मन्नू भंडारी ने राजनीति को भ्रष्ट करने वाले नेताओं की दोगली नीति और उसका शिकार बनी जनता का चित्रण करके काले धन पर पोषित सफेद हाथियों को बेनकाब कर दिया है। इस संबंध में नंदिनी आत्मसिद्ध का मत है– "स्वार्थ के लिए नैतिक मूल्यों को पैरों तले रौंदने वाले राजनीतिज्ञों को बिल्कुल नग्न करने वाली यह रचना आपातकाल के बाद तत्काल प्रसिद्ध हो जाने के कारण अपना एक अलग महत्व बनाए रखती है।"

सरोहा गांव में हरिजनों की झोपड़ियों को आग लगाई जाती है। उनकी झोपड़ियां राख में बदल जाती हैं और आदमी कबाब में। लेकिन रिपोर्ट के लिए न पुलिस आती है न नेता। लेकिन चुनाव के डेढ़ महीने पहले हरिजन युवक बिसेसर की मौत राजनीतिक दलों के लिए अपने बेटे की मौत से भी ज्यादा तिलमिला देती है। डॉ. जगन्नाथ चौधरी के शब्दों में, "बिसू की मौत राजनीति के अखाड़े में खेलने वालों के लिए मानो गिद्धों के लिए 'महाभोज' का जुगाड़ कर गई।"

दा साहब जैसे मुख्यमंत्री, बिसू के पिता हीरा को सांत्वना देने उसके घर जाते हैं। विरोधी पार्टी के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू का आदमी काशी कहता है, "देखो, अब हरिजनों को तो खुश करके रखना ही पड़ेगा।... उसके बिना गुजारा जो नहीं... राज नहीं करना है दा साहब को?" पर बेचारी निरीह जनता दा साहब की राजनीतिक कूटनीति को कैसे समझें? एक मुख्यमंत्री का हरिजन के घर जाना, उसे अपने साथ गाड़ी में बिठाना, उसके हाथों घरेलू योजना का उद्घाटन करना, इसका गांव की भीड़ पर गहरा असर होता है। "दा साहब के इस बड़प्पन के आगे सभी नतमस्तक हो आए हैं। बड़े–बूढ़ों को तो शबरी और निषाद की कथाएं याद हो आईं।"

हर बार जनता कभी बातों–आश्वासनों तो कभी पैसों के हाथों बिक जाती है और फिर इस राम–नीति के पीछे छिपी रावण–नीति का शिकार हो जाती है। उधर विरोधी पार्टी नेता सुकुल बाबू जनता को सत्तारूढ़ पार्टी के खिलाफ भड़काकर उनके प्रति हमदर्दी दिखलाते हैं। इनके शासनकाल में हरिजनों की झोपड़ियां जलाई गई थीं, क्रांति की आवाज और अपने अधिकार की मांग करने वाले बिसू को जेल की सजा हो गई थी, तब ये उनके हमदर्द दोस्त नहीं बने थे। लेकिन अब हरिजनों के पैंतीस प्रतिशत वोट हथियाने के लिए ऐसे रिरियाते हैं कि इन दोमुंहे लाचार राजनेताओं के प्रति मन क्षोभ और आक्रोश से भर जाता है। वह जनता को आश्वस्त करते हुए कहता है, "खड़ा हुआ हूं आप लोगों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए। बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए, बात केवल बिसू की मौत ही नहीं है... यह आप सब लोगों के जिंदा रहने का सवाल है... इसलिए मैं लडूंगा आपकी यह लड़ाई। ... आखिरी दम तक लडूंगा।" लगता है बिसू हीरा का बेटा नहीं, सुकुल बाबू का अपना बेटा है और उसकी मौत का दुःख भी उसका अपना है।

इस संबंध में डॉ. शीलप्रभा वर्मा का कथन सार्थक है– "गरीबों के लिए झूठे आंसू बहाने में निपुण मगरमच्छनुमा नेताओं द्वारा लगाए गए खोखले नारों के पीछे एक कुत्सित षड्यंत्र और दमघोंटू स्थितियों का निर्भीकता से चित्रण किया गया है।" दस वर्ष मंत्री पद भोग चुके सुकुल बाबू की दोगली नीति पर तरस आता है।

प्रस्तुत उपन्यास 'महाभोज' में लेखिका ने जनता को झूठे आश्वासन दिलाकर, उन्हें बहकाकर, फुसलाकर सत्ता हथियाने के लिए जनता को गुमराह करने वाले राजनेताओं की पोल खोली है। विधानसभा के उप चुनाव जीतने के लिए दा साहब और सुकुल बाबू जिन हथकंडों का इस्तेमाल करते हैं, वे हथकंडे ही आज समस्याएं बनकर खड़े हो जाते हैं। उनकी हर चाल भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है।

"देखो भाई! मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। इस राह पर मेरे साथ चलना है तो गीता का उपदेश गांठ बांध लो... फल पर दृष्टि ही मत रखो।" कहने वाले दा साहब हरिजनों के वोट हथियाने के लिए गीता के वचनों की हत्या करते हैं। सफेद–पोश में काले–कारनामे करने में वे सिद्धहस्त हैं। दा साहब चुनाव के पहले प्रचार–प्रसार के लिए 'मशाल' पत्र का कागज का कोटा बढ़वाकर संपादक दत्ता बाबू को अपने इशारों का टट्टू बनाते हैं, चुनाव के दौरान गरीबों के लिए घरेलू योजना का शुभारंभ करते हैं। जोरावर सिंह जैसे जालिम हत्यारे को पनाह देकर निरपराध बिंदा को गिरफ्तार करवाते हैं। ये सब केवल

उसकी ओर से पैंतीस प्रतिशत वोट प्राप्त करने हेतु हो रहा है। काशी कहता है, "देखो, जोरावर वाले वोट ही सबसे बड़ी ताकत है दा साहब की। पैंतीस प्रतिशत सालिड वोट! एक नहीं टूटता इनमें से... इन्हीं के चक्कर में तो इन्सानियत को सूली पर चढ़ा रखा है उस गीता के भक्त और बापू की औलाद ने!"

नेताओं ने सत्ता और शक्ति की बदौलत हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। दा साहब, जोरावर जैसे अंगरक्षकों को सहारा देकर अपनी इच्छानुसार मुजरिम तय करते हैं। जोरावर जैसा अपराधी इनके आश्रय में मजे लूटता है और बिंदा जैसा निरपराधी जेल में बंद कर दिया जाता है। ईमानदार पुलिस अफसर सक्सेना पदच्युत कर दिया जाता है और कानून को जूते की नोक पर रखने वाले सिन्हा को पदोन्नति मिलती है। त्रिलोचन सिंह को बर्खास्त कर दिया जाता है तो दल के असंतुष्ट नेताओं को धन का लालच देकर अपनी कुर्सी की रक्षा की जाती है। ये सारी बातें आज के नेताओं के नैतिक मूल्यों के विघटन का परिणाम है जो पूरे समाज को बीमार बना रही हैं।

मन्नू भंडारी ने बड़ी निर्भीकता एवं साहस के साथ राजनीति को सत्ता, भोग विलास, धन की प्राप्ति का अखाड़ा मानने वाले मंत्रियों को नग्न करके जनता के सामने प्रस्तुत किया है। वास्तव में इन स्वार्थी, पद के लालची, भ्रष्टाचारी और राष्ट्र विरोधी मंत्रियों को कौन–सी सजा दी जा सकती है! लेखिका ने देशवासियों के सामने चुनौती के रूप में प्रश्न उपस्थित किए हैं।

'महाभोज' उपन्यास में दा साहब मुख्यमंत्री के पद पर आसीन हैं। त्रिलोचन सहित पांच मंत्री पार्टी से असंतुष्ट हैं। चुनाव का फायदा उठाकर वे 'मंत्रिमंडल गिराओ' का हथकंडा अपनाते हैं। त्रिलोचन सिंह अपने आदर्शों, उद्देश्यों एवं सिद्धांतों के पक्के हैं। पार्टी की दोगली नीति, तिकड़मबाजी, गुंडागर्दी आदि को देश की गरीब जनता के प्रति समर्पित उनका व्यक्तित्व सह नहीं पाता। अपनी आत्मा के साथ बलात्कार होने की व्यथा उन्हें व्याकुल कर देती है। अतः वे नेक इरादे से पार्टी के विरोध में खड़े हो जाते हैं। स्वास्थ्य मंत्री राव और विकास मंत्री चौधरी इनका साथ देने को तैयार हैं लेकिन पूरे मोल–भाव के बल पर। राव स्पष्ट कहते हैं–

"यहां आप जनता के सामने नहीं बोल रहे लोचन भैया, बलि चढ़ाए जाने वाले दो बकरों के सामने बोल रहे हैं। घास–पात की कुछ व्यवस्था तो करेंगे या नहीं?" अर्थात वे सिद्धांतों, आदर्शों के लिए नहीं पर स्वार्थ हेतु पार्टी छोड़ रहे हैं, यह देखकर त्रिलोचन तिलमिला जाते हैं। वे सोचते हैं, "... क्या इसी परिवर्तन के लिए सुकुल बाबू की पार्टी और विधानसभा छोड़ी थी उन्होंने? इसी क्रांति का सपना देखा था? और क्या इसी टुच्चेपन की सौदेबाजी के लिए मंत्रिमंडल गिराने की बात सोच रहे हैं वे? नाम, चेहरे, लेबुल भले ही अलग–अलग हों पर अलगाव है कहां – सुकुल बाबू... दा साहब... राव... चौधरी...?"

मन्नू भंडारी ने मंत्रिमंडल में अपना वर्चस्व बनाने वाले पद लोलुप तथा धन के भूखे मंत्रियों को बेनकाब कर दिया है। राजनीतिक मूल्यों का ह्रास दलीय गुटबंदी के रूप में देखा जा सकता है। सभी दल स्वार्थों में डूबे हुए हैं, भ्रष्ट तंत्र को अपना रहे हैं। सही अर्थ में हमारी राजनीति विचारशून्य तो थी ही, इधर कुछ वर्षों से आचारशून्य भी हो गई है।

ईमानदारी अब खरीद–बिक्री का सामान हो गई है। राजनीतिक पार्टी खरीदी जाती है, एम.एल.ए. और एम.पी. बिकते हैं, मंत्रालय बिकते हैं। जिनके हाथों में हमने देश की बागडोर सौंपी है वे निजी स्वार्थों के लिए बिक जाते हैं तो देश का भला कैसे हो सकता है?

'महाभोज' उपन्यास में समाज की नब्ज पहचानने वाले चालाक मुख्यमंत्री दा साहब कहते हैं– "कुर्सी पर बैठना है तो जनता में फूट डालो... कुर्सी बचानी है तो जनता में फूट डालो। जनता की एकता कुर्सी के लिए सबसे बड़ा खतरा है।" वे यह भी जानते हैं कि जनता की एकता में बड़ा जोर होता है। जनता एक हो जाएगी तो कुर्सीधारियों को कुर्सी सहित जमीन में गाड़ देगी। इसलिए दा साहब असलियत को प्रकट करते हुए कहते हैं, "तूफान आता है तो बड़े–बड़े पेड़ों को जड़–सहित उखाड़ फेंकता है। जनता एक होती है तो बड़े–बड़े राज्य उलट देती है।"

विपक्षी पार्टी के नेता सुकुल बाबू हरिजनों के हमदर्द बनकर इनके वोट प्राप्त करने के लिए हरिजन–सवर्ण के भेद की दीवार को और ऊंची कर रहे हैं। दा साहब को सवर्णों का हिमायती बताकर हरिजनों व दलितों को भड़का रहे हैं। दा साहब कहते हैं– "दुहाई गरीबों की सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नहीं सोचता। जनता को बांटकर रखो... कभी जात की दीवारें खींचकर, तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर! जनता का बंटा–बिखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओं की शक्ति का स्रोत है।"

जोड़–तोड़ की नीति चुनाव का एक मजबूत हथियार है। जहां जनता में फूट डालकर उनकी शक्ति को कमजोर किया जाता है वहां सत्तारूढ़ पार्टी के लोगों को बहलाकर–फुसलाकर फूट डालने का प्रयास किया जाता है। सुकुल बाबू का आदमी जोरावर को दा साहब के विरुद्ध भड़काने के लिए कहता है– "... जिंदगी भर गुलामी करनी पड़ेगी उसे दा साहब की। पैसा भी दो और अंगूठे के नीचे भी रहो। एक बार जीतकर विधानसभा में पहुंच जा, फिर दा साहब को मुट्ठी में रखना।" इस प्रकार जोरावर जैसे जाट आदमी को दा साहब से अलग करके वोट हथियाने के तथा उनकी शक्ति क्षीण करने के दांव–पेंच खेले जाते हैं। अर्थात चुनावी हथकंडों में हर कोई दूसरे की कब्र पर अपना महल खड़ा करने में तुला है। इस फूट–नीति की कूट–नीति ने हमारे समाज और देश को अंदर से खोखला बना दिया है। इसका कहीं–न–कहीं अंत जरूर होना चाहिए अन्यथा फिर एक बार देश की स्वतंत्रता खतरे में आएगी।"

लेखिका ने पूरे समाज को अपंग बना देने वाले राजनेताओं का चरित्र उजागर किया है– "अरे यों तो धोती के नीचे सभी नंगे और ससुरी इस राजनीति में तो धोती के बाहर भी नंगे। पर दा साहब एकदम अपवाद? धोती के नीचे भी धोती ही निकलेगी इस गीता बांचने वाले के। खाल खींचने पर ही सामने आ सकता है इनका नंगापन।" मन्नू भंडारी ने साम–दाम–दंड, अर्थ और भेद नीति को अपनाकर पूरे राजनीतिक माहौल के साथ समाज के हर क्षेत्र को भ्रष्ट करने वाले, राजनेताओं को पूरी तरह नंगा कर दिया है। लेखिका अपने दायित्व के बारे में लिखती है, "... इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण–शोध के रूप में देखती हूं।"

आज केवल कहने के लिए ही प्रजातंत्र है। प्रजातंत्र पर राजतंत्र काबिज हो चुका है। "ढोल पीटने और दुहाई देने के लिए तो जरूर प्रजातंत्र था पर उसकी असलियत यह कि प्रजा बिल्कुल बेमानी तंत्र मुट्ठीभर लोगों की मनमानी।" इसके लिए जिम्मेदार है पूंजीवादी व्यवस्था और जोड़–तोड़ की नीति। हमारे देश में नेताओं ने जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ग भेद मिटाकर जनता को एकजुट करने का प्रयास किया लेकिन आज 'फूट डालो और राज करो' इस ब्रिटिश नीति को अपनाकर चुनाव लड़े और जीते जा रहे हैं। यह फूट नीति कहीं धर्म के नाम पर, कहीं जाति संप्रदाय के नाम पर तो कहीं वर्ग के नाम पर फल–फूल रही है। जाति–धर्म संप्रदाय तथा वर्ग भेद को बनाये रखने में हमारे सफेदपोश नेता ही जिम्मेदार हैं। क्योंकि जनता का एकजुट होना उनके लिए बहुत बड़ा भारी खतरा है।

राजनीति के घिनौने माहौल ने देश और समाज के नैतिक मूल्यों का ह्रास करके उन्हें पतन की गहरी खाई में धकेल दिया है। मन्नू भंडारी ने इन समस्याओं के प्रभाव और परिणाम को प्रस्तुत किया है साथ ही इस घिनौने माहौल को चीर देने की शक्ति बिसू और बिंदा जैसे युवाओं में भर देने का प्रयास किया है।

'महाभोज' में मन्नू भंडारी ने राजनीतिक क्षेत्र की लगभग सभी समस्याओं को उनकी विसंगतियों एवं विकृतियों को उजागर किया है। इस प्रकार महाभोज में पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाला और शोषितों में क्रांति की भावना पैदा करने वाला हरिजन युवक बिसेसर तथा मुख्यमंत्री को मुंहतोड़ जवाब देने वाला बिंदा क्रांति की धधकती चिंगारियां हैं। "तीस साल से आप लोगों की बातें ही तो सुनते–समझते आ रहे हैं। क्या हुआ आज तक? पेट भरने के लिए अन्न नहीं, आपकी बातें... खाली... बातें।" लेखिका की मांग है– बिंदा की आवाज को बुलंद करने की, बिसू की धधकती राख की चिंगारियां बनकर सुलगने की तथा ईमानदार पुलिस अफसर सक्सेना का हौसला बढ़ाने की। यही इस उपन्यास की उपलब्धि है।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति सुविधा और सत्तावाद की राजनीति हो गई है। और मानवीय भावना से बिल्कुल दूर हो गई है। अवसर और सत्ता के लोभ की राजनीति भले ही भोले–भाले लोगों की आशाओं को कुचलती रहे लेकिन अन्याय और शोषण के विरोध में छाती ठोककर खड़े होने वाले बिसू का संधान और बिंदा का क्रंदन निरंतर संक्रमित होता रहेगा, दमन और शोषण का लावा उसे मिटा नहीं पाएगा। एक बिसू को मार देने से, एक बिंदा को दोषी बनाकर कैद करने से तथा एक सक्सेना को सच कहने के बदले बर्खास्त करने से न्याय और सत्यनिष्ठा की आवाज दब नहीं सकती। वह उठती ही रहेगी। इस संबंध में डॉ. रामविनोद का कहना है– "निश्चय ही बिंदा की पिटाई तथा सक्सेना की मुअत्तली पाठकीय आक्रोश को अधिक तीव्र बना पाती है। यद्यपि यह सच्चाई हमारे समाज की है। फिर भी उपन्यास की सच्चाई हमें नए ढंग से उत्तेजित करती है...।" मन्नू भंडारी ने भ्रष्ट राजनीति का सफाया करने की मांग की है।

आज जनता के सामने कोई आदर्श नहीं रहा है। युवा वर्ग भ्रमित हो रहा है। उनके सामने कोई लक्ष्य तथा आदर्श नहीं है। भ्रष्ट नेताओं ने समाज को बर्बाद कर दिया है। मन्नू

भंडारी ने महाभोज उपन्यास में दा साहब जैसे भ्रष्टाचारी और दुराचारी नेता के द्वारा इस समस्या की विकरालता को स्पष्ट किया है। दा साहब कहते हैं– "देश की दुरावस्था का सबसे बड़ा कारण ही है– सही नेतृत्व का अभाव। छात्रों को देखो–युवकों को देखो, किसान–मजदूरों को देखो, सब–के–सब दिशाहीन से भटक रहे हैं – कोई दिशा दिखाने वाला ही नहीं।"

आज देश को दिशा दिखाने वाले खुद भटककर पूरे समाज को भटका रहे हैं। जनता नेताओं के भोग विलास, शोषण और भ्रष्टता से त्रस्त हो चुकी है। वह मन–ही–मन बदलाव की चाह रखने लगी है। लेकिन सदियों से शोषण के कारण वह शरीर व मन से पंगु हो चुकी है। 'महाभोज' में लेखिका ने त्रिलोचन सिंह के द्वारा जनता की समस्या को उठाया है– "अब कहां से होगी दूसरी क्रांति और कौन करेगा उस क्रांति को जो सब कुछ बदल दे? आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज घोंट दी जाती है – उसे काटकर फेंक दिया जाता है। एक तरफ फिंके गिने–चुने आदमियों के घुटे गले और रुंधी आवाजों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी।" त्रिलोचन आदर्श की भाषा बोलते हैं तो उन्हें स्वादिष्ट भोजन में पड़ी मक्खी की तरह अलग किया जाता है। सचमुच आज समस्त नेता 'काजल की कोठरी' में बद्ध हैं, उनके तन–मन–धन सब काले हैं। अतएव उनके कालेपन पर उंगली उठाने वालों को वे ऐसा पछाड़ते हैं कि फिर वे चूं–चपड़ तक नहीं करें।

इस प्रकार मन्नू भंडारी ने आज के नेताओं को अपनी लेखनी द्वारा भरे बाजार में नंगा कर दिया है। वे राजनीति की बर्बरता, भ्रष्ट नेता, युवा वर्ग की कुंठा तथा नेताओं की नैतिकता में परिवर्तन लाना चाहती हैं। उनका विश्वास है कि यह परिवर्तन गांव से व गरीब तबके से ही संभव है। लेखिका ने जहां एक ओर गरीबों के शोषण करने वाले नेताओं को चेतावनी दी है तो वहीं दूसरी ओर भ्रष्ट राजनीति और राजनेताओं के क्रूर पंजों में मचलते लोगों को अन्याय और अत्याचार के विरोध में आवाज उठाने के लिए भी प्रेरित किया है।

'महाभोज' उपन्यास की कहानी एक विद्रोही स्वभाव के युवक बिसेसर की मौत के चारों तरफ बुनी गई है। गांव के इस युवक की मौत पर राजनीति कुछ ऐसी गरमाती है कि मुख्यमंत्री भी उसके लपेटे में आ जाते हैं। इस मौत की तहकीकात कर रहे होते हैं एस. पी. सक्सेना। उनके सर पर अपने ही पुराने पापों का कुछ ऐसा बोझ है कि वो इस बिसेसर की मौत के मामले में ही सबका प्रायश्चित करने की सोच रहे हैं। उधर गरीब से बिसेसर के पिता हैं जो दो राजनैतिक विरोधियों के बीच पिसे जा रहे हैं। अपने बेटे की मौत का अफ़सोस भी नहीं कर पा रहे। ये कहानी राजनीतिक चालों की है। उसके बचाव में चली गई दूसरी चालों की भी है। शतरंज की गोटियों की तरह अपनी जान–पहचान, अपने रसूख के इस्तेमाल की कहानी है 'महाभोज'।

'महाभोज' उपन्यास के दा साहब एक ऐसे राजनीतिक नेता हैं, जो दूसरे तबकों के साथ–साथ हरिजनों के वोट की भी आशा रखते हैं। परंतु लोग आज इतने सतर्क हो रहे हैं कि कौन अपना कौन पराया जानने लगे हैं। 'लखन' दा साहब का कार्यकर्ता है जो सरोहा से चुनाव के लिए खड़ा है। सरोहा में बिसू की हत्या हो गई है और सभी जानते

हैं कि इसके पीछे जोरावर सिंह का हाथ है, जो दा साहब का ही आदमी है। ये तो जाहिर है कि अगर दा साहब के ही आदमी ने बिसू की हत्या की है तो हरिजन वोट उन्हें कैसे मिलेंगे? हो सकता है बाकी लोग भी वोट देने से इन्कार करें। राजनीतिज्ञ कैसे लोगों में जातिवादिता की दीवार खड़ी करते हैं और अपना स्वार्थ साधते हैं, इस संदर्भ में मन्नू भंडारी लिखती हैं– दुहाई गरीबों की सब देते हैं पर उनके हित की बात कोई नहीं करता। जनता को बांटकर रखो... कभी जात की दीवारें खींचकर... तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर।

आज जनता के मन में पुलिस का आतंक छाया हुआ है। कानून के ये रखवाले अपराध कबूल करवाने के लिए ऐसी भयंकर अमानवीय यातनाएं देते हैं कि कभी–कभी पकड़े गए आदमी की जान तक चली जाती है। अपराधी कितना भी जघन्य अपराध क्यों न करें अदालत द्वारा दंडित होने से पूर्व वह निर्दोष ही समझा जाता है। पर आज के वर्तमान युग में पुलिस निरपराधी से गुनाह कबूल करवाने के लिए ऐसा हथकंडा अपनाती है कि आदमी की रूह कांप जाती है। 'महाभोज' उपन्यास में बिसेसर के पिता द्वारा इस समस्या को यथार्थ रूप में दर्शाया गया है– "ऊ निसान तो सरकार जेहल से छूटि के जब आवा, तबै के हैं। जब आवा रहै न साहब, तब कलाई और टखनन पर घाव रहे... उनसे खून और मवादौ आवत रहा... सारे सरीर पर जखमै–जखम रहे–बाहर भीतर सब जगह।" निरपराध बिंदा को बिसू की हत्या के जुर्म में पकड़ा जाता है। बिंदा ने जो जुर्म किया ही नहीं है, उसे कबूल करवाने के लिए रुई की धुन की तरह बेंतों और ठोकरों से उसे पीटा जाता है।

साधारण जनता ये सब देखती–सुनती है लेकिन पुलिस के नाम से भी डरती है। जबकि होना तो यह चाहिए कि पुलिस के सामने जनता को अधिक सुरक्षित महसूस करना चाहिए न कि आतंकित। जनता यदि पुलिस से डरती है तो यह पुलिस प्रशासन पर एक धब्बा है। पुलिस निरीह लोगों व गरीब मजदूर जनता पर अत्याचार करती है और अमीर पैसे वाले हर दिन काले कारनामे करते रहते हैं। मन्नू भंडारी ने भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था को बिल्कुल बेनकाब किया है। और सक्सेना के चरित्र द्वारा समस्या समाधान के उपाय भी दिए हैं। आज हमारे देश को सक्सेना जैसे निडर पुलिस अफसर की जरूरत है।

'महाभोज' में भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था की विकृतियों को उजागर किया गया है। बिसेसर की मौत की तहकीकात करने आए एस.पी. सक्सेना बिंदा से कहते हैं– "कानून वाले को तो आज बाजारू औरत बना के छोड़ दिया है। जिसे हर पैसे वाला जब चाहे अपने घर में बिठा ले।" कानून हर बार सबूत की मांग करता है और धन तथा पद के पुजारी और राजनीतिज्ञ की मिलीभगत उसे नष्ट करने में तत्पर रहती है।

सरोहा गांव में हरिजनों को उनकी झोंपड़ियों सहित जिंदा जला देना फिर बिसू की हत्या, ये जुर्म करने वाले को सभी जानते हैं पर सारी तिकड़मबाजी तो उसी को बचाने के लिए हो रही है। बिंदा कहता है– "जुर्म की पहचान रह गई है आप लोगों को? बड़े–बड़े जुर्म आप लोगों को जुर्म नहीं लगते। जिंदा आदमियों को जला दो... मार दो... यह सब जुर्म नहीं है न आपकी नजरों में?"

सक्सेना दा साहब और डी.आई.जी. सिन्हा के आदेश पर बड़ी नरमाई से पेश आकर बयान लेते हैं लेकिन बिंदा इस भ्रष्ट पुलिस की काली नीति से परिचित है। धन और पद

प्राप्ति के लिए गरीबों का शोषण करने वाले इन भ्रष्ट पुलिस वालों से जनता का विश्वास उठ गया है। तहकीकात के लिए आए सक्सेना से बिंदा कहता है– "क्यों झूठ–मूठ गांव वालों के साथ मजाक कर रहे हैं? दा साहब से लेकर आप तक की शतरंज में आज बिसू की मौत का मोहरा फिट बैठ रहा है, इसीलिए इतने जोर–जोर से तहकीकात हो रही है – पर होना–जाना कुछ नहीं है... क्या हो गया है आप सब लोगों को... कोई ईमान–धरम नहीं रह गया है किसी का भी... लानत है सब पर!" खाकी वर्दी पहनकर अपना ईमान–धरम बेचने वाले गद्दारों को बिंदा शब्दों के कोड़े–पर–कोड़े लगवाता है।

इससे पुलिस अफसर सक्सेना की अंतर आत्मा जाग उठती है। वह बिंदा की आवाज को बुलंद करके कानून को बिकने नहीं देता। पर प्रशासन ईमानदार सक्सेना को सस्पेंड कर देता है और दा साहब के दरवाजे पर खड़ा होकर जी हुजूरी करने वाले डी.आई.जी. सिन्हा को जनता के साथ गद्दारी करने के बदले प्रमोशन कर दिया जाता है। यही पुलिस व्यवस्था की विडंबना और नैतिकता का ह्रास है। जो समाज के सामने चुनौती के रूप में खड़ा है। इसके संबंध में डॉ. जेकब का कहना है– "वर्तमान समय में पुलिस विभाग के कार्यों को देखते हुए लगता है कि लोकतंत्र की समस्त शक्तियां केवल उन्हीं तक आकर सिमट गई हैं। चाहे जिसे छल प्रपंच द्वारा न्याय के शिकंजे से जकड़ लेना अथवा मुक्त करवा देना, इनके बाएं हाथ का खेल बन गया है।"

हमारे आर्थिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त पूंजीवाद ने राजनीतिक जीवन में काफी समस्याएं पैदा की हैं। पद पर बैठा हर व्यक्ति धन कमाने के लिए तिकड़में लड़ाता रहता है। धन के बलबूते पर चुनाव जीतकर कुर्सी हथिया लेता है। भ्रष्ट नेता नोट के बल पर वोट खरीद लेते हैं– "दो समय का खाना और पांच रुपया प्रति व्यक्ति तय हुआ है। बच्चों के लिए भी दो–दो रुपये दिए जाएंगे। लोगों का क्या है, मजदूरी नहीं की और मौज कर ली पूरे कुनबे ने – बच्चों के पैसे और खाना मुफ्त!" इस प्रकार सुकुल बाबू ने अपना शक्ति प्रदर्शन दिखाने के लिए किसान रैली में एक लाख लोगों को किराये पर इकट्ठा किया। दूसरी ओर दा साहब ने घरेलू योजना का लालच देकर वोट हथियाने की तरकीब लड़ाई। "... चंद दिनों में ही गांव का सारा माहौल बदल दिया है इस योजना ने। लोगों की बातचीत का भी विषय यही, सोच का विषय भी यही।"

नेतागिरी इनके लिए एक व्यवसाय से अधिक कुछ नहीं है। पास में धन है तो चुनाव जीतना कठिन नहीं है। आज व्यक्ति छोटी–छोटी सुविधाओं के लिए बिक रहा है। वह भ्रष्ट राजनेताओं के शतरंज के खेल का मोहरा बन बैठा है। जोरावर जैसा सरोहा गांव की आधी जायदाद का मालिक बनकर जनता का शोषण कर रहा है। दलितों की झोपड़ियों को आग लगाने वाला और बिसेसर का हत्यारा वही है। पर धन और शक्ति के दम पर उसने ऐसा साम्राज्य स्थापित कर लिया है कि कोई उसके खिलाफ मुंह तक नहीं खोलता। वह कहता है– "तुम फिकर नहीं करो पांडेजी, जोरावर के रहते। हमें मालूम है, सुकुल बाबू को वोट देने वाले कौन हैं? तुम क्या सोचते हो, हमारे रहते बूथ पर पहुंच पाएंगे वे लोग? जोरावर के राज में वे ही वोट दे पाएंगे जिन्हें जोरावर चाहेगा।" इस प्रकार मतदाता पूंजीपतियों के हाथ का खिलौना बन गए हैं। पूंजीवाद, शक्तिवाद के रूप में विकसित हुआ है और शक्ति

के सामने सभी कौड़ीमोल बिक रहे हैं। जब तक प्रजातंत्र में पूंजीवाद रहेगा तब तक आम जनता यूं ही परेशान होती रहेगी। इस प्रकार जनतंत्र में पूंजीवाद का प्रभाव देश की स्थिति के लिए हानिकारक सिद्ध होगा।

देश में शांति व सुरक्षा बनाए रखने के लिए कानून बनाए गए और कानूनों की रक्षा के लिए पुलिस का गठन किया गया है। पुलिस निष्पक्ष और बिना किसी भेदभाव के निःस्वार्थ कानून की रक्षा करती है। और कानून का उल्लंघन करने वालों को न्यायालय के समक्ष उपस्थित करती है। आज पुलिस कानून की रक्षक नहीं बल्कि भक्षक बन गई है। आज पुलिस पूंजीपतियों, नेताओं व शक्तिशाली लोगों के हाथों की कठपुतली बन गई है। पुलिस जनता को धमकाकर, झूठे मामलों में फंसाकर जनता का शोषण कर रही है। उसे लूट रही है। अपराधी व गुंडों के साथ हाथ मिलाती है और निरपराध लोगों को कठोर दंड व यातनाएं देती है।

आज हमारे देश में न्याय व्यवस्था भी बिल्कुल चौपट हो चुकी है। न्याय प्रक्रिया इतनी लंबी होती है कि न्याय मांगने वाला थक–हारकर बैठ जाता है। न्याय में नैतिक मूल्यों का विघटन हो चुका है। न्याय व्यवस्था में पारदर्शिता एवं दूध का दूध और पानी का पानी कर देने की शक्ति होनी चाहिए। सैद्धांतिक रूप से हमारी न्याय प्रक्रिया अनुमान पर नहीं प्रमाण पर आधारित होती है। यहां झूठे साक्ष्य इकट्ठे करने तथा थोड़े से पैसों के लालच में झूठी गवाही देने वालों की कमी नहीं है जिसके परिणामस्वरूप निर्दोष लोग सजा पा जाते हैं। इस प्रकार पूरी न्याय–व्यवस्था भ्रष्ट राजनीति की शिकार हो जाती है। न्याय व्यवस्था को भ्रष्ट करने वालों में मंत्री से लेकर संतरी तक सब शामिल होते हैं। कानून के बल पर केवल गरीबों का ही शोषण होता है। कितने मासूम और निर्दोष लोग बिना अपराध किए ही सजा पा जाते हैं। और धन व शक्ति के बल पर अपराधी समाज में खुले सांड की तरह घूमते हैं। इस संबंध में डॉ. जेकब का कथन है– "आज न्याय प्राप्त करना टेढ़ी खीर है। न्याय के लिए अनेक जटिल प्रक्रियाओं को पार करना पड़ता है। अनेक पड़ावों पर रुकती–रेंगती आज की न्याय–प्रणाली यथार्थ में खोखली है।"

हमारी न्याय की देवी सचमुच ही अंधी बन गई है, अगर वह आंखें खोलकर देख पाती तो न्याय व्यवस्था की यह हालत न होती जो आज हो रही है। वैसे न्याय तथा कानून व्यवस्था भ्रष्ट नहीं होती लेकिन हमारे ही समाज के कुछ स्वार्थी लोगों ने उसे भ्रष्ट किया है। पूंजीवादी पहरेदारों ने धन, सत्ता और शक्तियों के बल पर उसे खरीद लिया है। शासक और पुलिस के गठबंधन में बेचारा गरीब व निर्दोष बर्बाद हो जाता है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में इन समस्त विकृतियों को प्रस्तुत करके भ्रष्ट व्यवस्था पर कुठाराघात किया है।

'महाभोज' उपन्यास में जब बिसेसर गरीब गांव वालों को उनका अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष कर रहा था तो जोरावर जैसे ताकतवर जमींदार ने उसे इस तरह परेशान किया कि उसकी आवाज हमेशा के लिए बंद हो गई। मुख्यमंत्री दा साहब व जोरावर की सांठ–गांठ ने न्याय को दरकिनार कर दिया। पहले बिसेसर को नक्सली बताकर उसे जेल में बंद किया और उस पर इतना अमानवीय अत्याचार किया कि चार साल बाद जेल से

बाहर आने के बाद भी उसके शरीर के जख्म नहीं भरे। उसका दोष सिर्फ इतना ही था कि वह जोरावर के अत्याचार और शोषण के खिलाफ खड़ा हुआ था।

उसके पिता हीरा का कहना था– "सच कही सरकार, हमारा बिसू कौनौ दिन जुलुम नाहीं कीन्हा रहा, कौनौ गलत कामौ नाहीं कीन्हा रहा।... आपै बताओ सरकार... काहे लै गवा रहै हमार बिसुआ को? बेगुनाह का जेहल भैजै काओ कौनो कानून होत है का?"

आज न्याय और कानून व्यवस्था जोरावर जैसे गुंडों और दा साहब जैसे राजनेताओं के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है। कानून के रक्षक ही आज भक्षक बन गए हैं। अपने निजी स्वार्थों की खातिर सत्ता और शासन के हाथों अपना ईमान बेच रहे हैं। बिंदा पुलिस अफसर सक्सेना से पूछता है– "बेगुनाहों को पकड़ने का भी और गुनाहगारों को छोड़ने का भी, यही तो न्याय है आप लोगों का।"

बिसेसर ने जेल से बाहर आकर आगजनी की घटना के प्रमाण व सुबूत जुटाकर असली अपराधी को पकड़वाने का प्रयास किया तो उसकी हत्या करा दी गई। चुनाव के दौरान हुई बिसू की मौत राजनीतिक दलों के लिए चुनाव जीतने का एक मुद्दा बन गई। पहले बिसू की मौत को आत्महत्या सिद्ध करने की कोशिश की गई फिर हत्या सिद्ध करने का सिलसिला जारी रहा। कानून के रक्षकों एवं राजनीतिक शक्तियों ने अपराधी का बचाव किया और निर्दोष लोगों को अपराधी घोषित कर बलि का बकरा बना दिया। सुकुल बाबू कहते हैं– "...इसलिए अच्छी तरह जान लीजिए कि इस हत्या के लिए कुछ नहीं होने जा रहा। कौन करेगा? पंचायत इनकी... पुलिस इनकी, और अब तो विश्वास हो गया होगा आपको कि सरकार भी इन्हीं की है। तब कौन लड़ेगा आपकी लड़ाई?... आपको न्याय दिलाने के लिए... आपका हक दिलाने के लिए कौन आएगा?"

कोर्ट हमेशा चश्मदीद गवाहों के बयान को ही सटीक मानता है। पर आज कानून के ठेकेदारों ने व गवाहों की बिक जाने वाली प्रवृत्ति ने न्याय व्यवस्था को भ्रष्ट कर दिया है। लोग सब कुछ जानते हुए भी अन्यायी और अत्याचारी के खिलाफ कुछ भी बोलते हुए थर्राते हैं। बिंदा दा साहब से कहता है– "कौन देगा गवाही... मरना है किसी को शिनाख्त करके? चार दिन यहां आकर रह लीजिए... पता चल जाएगा कि कैसा आतंक है।"

अंत में बिंदा स्वयं बिसेसर ने आगजनी के जो साक्ष्य जुटाए थे, उन्हें लेकर दिल्ली जाने का फैसला करता है। लेकिन दा साहब और डी.आई.जी. सिन्हा मिलकर एक ऐसा जाल बिछाते हैं कि बेचारा बिंदा ही बिसू का हत्यारा घोषित कर दिया जाता है। थाने में पुलिस की हिंसक यातना सहते हुए बिंदा तड़पकर और रोता हुआ कहता है– "मैंने बिसू को नहीं मारा... मैं बिसू को मार ही नहीं सकता। मुझे तो उसकी आखिरी इच्छा पूरी करनी है। मैं उसे पूरी करके ही रहूंगा...।" यही है हमारी न्याय व्यवस्था, जिसे छोटे–छोटे प्रलोभनों की खातिर भ्रष्ट किया जाता है।

चुनाव में दा साहब को जोरावर के 35 प्रतिशत वोट का लालच था तो सिन्हा को अपने प्रमोशन का। इन दोनों की मिलीभगत ने जोरावर जैसे गुंडे व गुनहगार को खुला छोड़ दिया और बिंदा जैसे निरपराधी और निर्दोष को हत्या के जुर्म में फंसा दिया। सत्ता और धन के बल पर न्याय व्यवस्था की धज्जियां उड़ाने वाले भ्रष्टाचारियों के आगे गरीब तथा

निर्दोष व्यक्तियों का कोई वश नहीं चलता। इसी भ्रष्टाचार से उत्पन्न देश और समाज की समस्याओं का यथार्थ अंकन मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में किया है।

महाभोज में मन्नू भंडारी ने समाज के निचले तबके के आर्थिक शोषण को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। आज भी हमारे देश के कुछ इलाकों में जमींदारी प्रथा और उनके द्वारा गरीबों का शोषण हो रहा है। सरोहा गांव के गरीब और मजदूर आर्थिक स्थिति खराब होने की वजह से अपना सब कुछ जमीदारों और साहूकारों के यहां गिरवी रख देते हैं। और स्वयं शोषण का शिकार होकर कीड़े–मकोड़े की तरह जिंदगी व्यतीत करते हैं। इस शोषण को बिंदा इस प्रकार व्यक्त करता है– "ऐसा आतंक आपने कहीं देखा नहीं होगा, साहब! लोगों के घर, जमीन और गाय–बैल ही रेहन नहीं रखे हुए हैं जोरावर और सरपंच के यहां, उनकी आवाज और जबान तक बंधक रखी हुई है। कोई चूं तक नहीं कर सकता है।" कर्ज और उसका ब्याज चुकाने में ही उनकी जिंदगी गुजर जाती है। आर्थिक शोषण की चक्की में पिसता गरीब व्यक्ति अपनीं पहचान तक भूल जाता है।

महाभोज में महेश बिंदा से कहता है– "तुम गुस्से में आकर किसी को मार भी आए तो क्या उससे समस्या हल हो जाएगी? जुर्म का जवाब जुर्म नहीं होता, बिंदा।... जब तक हमारी व्यवस्था में जाति–भेद है और अमीर–गरीब की खाई है...।"

लेखिका ने कुर्सी और सत्ता के लोभ में उलझे शिक्षा मंत्री को भी अपनी लेखनी की चपेट में लिया है। दा साहब राव को शिक्षा मंत्री का पद देना चाहते हैं। वे कहते हैं– "मेरे हिसाब से सबसे महत्वपूर्ण है यह पद। भावी पीढ़ी का निर्माण कराने का पूरा दायित्व इसी मंत्रालय पर है।" परंतु राव का ध्यान युवा पीढ़ी पर नहीं केवल अपने पर ही जमा है। छोटे–मोटे लालच के लिए अपने आपको बेचने वाला राव जैसा भ्रष्ट व्यक्ति शिक्षा मंत्री बन जाए तो उससे जनता क्या उम्मीद रख सकती है। त्रिलोचन जैसा आदर्श, मूल्यवादी शिक्षामंत्री राव जैसे धन–लोलुप मंत्रियों का क्या मुकाबला कर सकता है। आखिर में इस प्रकार के अवसरवादी मंत्री उन्हीं के पास जाते हैं जो उनकी सात पुश्तों का उद्धार कर सकता है। मुख्यमंत्री दा साहब ने राव को शिक्षामंत्री बनाने का आश्वासन दिया तो बापट मेहता को धन का लालच दिया। हर दिन अपना मोल–भाव करने वाले मंत्रियों के बल पर ही आज हमारा राज चल रहा है।

भ्रष्ट राजनीति ने समाचार पत्रों तथा जल संचार के अन्य साधनों को भी प्रभावित किया है। महाभोज में 'मशाल' के संपादक दत्ता बाबू को सत्तारूढ़ पार्टी के नेता दा साहब सरकारी विज्ञापन देने और कागज का कोटा बढ़ाने का लालच दिखाते हैं तो वह रातोंरात अखबार का रूप ही बदल देता है। 'मशाल' में वही समाचार प्रकाशित होते हैं जो दा साहब को सत्तारूढ़ करने में सहायक हो।

बिंदा और महेश आगजनी घटना के सभी प्रमाण जुटाकर दत्ता बाबू के पास आते हैं, जिससे यह सिद्ध हो सकता था कि बिसू ने आत्महत्या नहीं की, बल्कि उसकी हत्या हो गई है। महेश दत्ता बाबू से कहता है, "बहुत साफ है कि आगजनी का मुजरिम और बिसू का हत्यारा एक ही है... अब वे ही प्रमाण... इनके पास हैं।" नरोत्तम दत्ता बाबू के पीछे पड़कर, उन्हें इस बात के लिए उकसा रहे हैं कि दिन–दहाड़े होते अत्याचार का 'मशाल' पर्दाफाश करें। सर्वहारा लोगों को न्याय दें। पर दत्ता बाबू तो दा साहब के हाथों बिक चुके

हैं। पत्रकार नरोत्तम की आत्मा ये सब देख–समझकर तिलमिलाती है। वे कहते हैं, "...आप लोगों के लिए अखबार का मतलब है सिर्फ धंधा। कितने बेदम, बेजान और नपंसुक हैं हम सब पत्रकार।"

व्यक्तिगत स्वार्थ के सभी नैतिक मूल्यों को पैरों तले रौंदने वाले, सफेदपोश में काले कारनामे करने वाले राजनीतिज्ञों को बिल्कुल नग्न करने वाली 'महाभोज' रचना अपना एक अलग और विशेष महत्व बनाए रखती है। चुनाव के दौरान सरोहा गांव में बिसेसर नामक क्रांतिकारी हरिजन युवक की मौत और वर्तमान नेताओं को चुनावी हथकंडे लड़ाने के लिए 'महाभोज' बन जाती है।

2.3 'महाभोज' में दलित चेतना

'दलित' शब्द कुचले हुए, दबाए गए शोषित जनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, "दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन किया गया हो। उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित आदि। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा है।" भारतीय संविधान के अनुसार, जिन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखा गया है वह वर्ग या जाति दलित कही जाती है। आधुनिक साहित्य का सबसे विवादग्रस्त साहित्यिक आंदोलन दलित साहित्य ही है। दलित कहा जाने वाला ही कभी शूद्र, अस्पृश्य, अछूत और गांधी जी का 'हरिजन' कहलाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई, डॉ. भीमराव अंबेडकर आदि ने अछूतों व दलितों के उद्धार के लिए विशेष कार्य किया। उनके द्वारा किए गए कार्यों से दलितों में जागृति आई और वे अपने अधिकारों एवं समाज में हुए अपने अपमान के लिए न्याय मांगने के प्रति सचेत हुए। महात्मा गांधी ने भी हरिजनों के उद्धार के लिए काफी संघर्ष किया। संत रैदास पहले दलित और दलित चेतना के कवि माने जाते हैं जिन्होंने वर्ण व्यवस्था के साथ संघर्ष किया। स्वतंत्रता से पहले और बाद में भी हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, उग्र, निराला, रांगेय राघव, नागार्जुन आदि लेखकों ने अपने उपन्यासों में दलित समाज की समस्याओं को उठाकर दलितों में चेतना जगाने का कार्य किया है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' लिखकर उपन्यासों को ऐसे स्थान पर पहुंचाया जहां बहुत कम लेखकों की पहुंच होती है।

हमारे देश को उपनिवेशवाद की विरासत के रूप में दरिद्रता, विषमता और पिछड़ापन मिला है जबकि हम देखते हैं कि देश में कुछ मुट्ठीभर लोग भले ही सत्ता पक्ष में हों या उसके विरोध पक्ष में, असंख्य भारतीय जनता का शोषण कर रहे हैं। उनमें आपस में कोई पिछड़ापन नहीं है। दरिद्रता और पिछड़ापन तो देश के अस्सी प्रतिशत जनता के हिस्से की चीज बनकर रह गए हैं। मन्नू भंडारी हिन्दी साहित्य की अकेली उपन्यासकार हैं जिन्होंने 'महाभोज' उपन्यास में इस तथ्य का बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया है। विलाप करते हुए देश में चुनाव का बिगुल बज जाता है। हिंसा और आंसुओं के सैलाब में सत्तापक्ष और विपक्ष के नेता वोट मांगने पहुंच जाते हैं। क्या वे वोट गरीब और सताए हुए लोगों के आंसू पोंछने

और उनके जख्मों को भरने वाले होते हैं? 'महाभोज' इस दिशा में सोचने का एक नया प्रयास है।

'महाभोज' में विलाप करता हुआ सरोहा गांव तो एक प्रतीक है जहां बिसेसर नाम का एक हरिजन युवक है जो जमींदार जोरावर सिंह द्वारा मरवा दिया गया है। "क्या दोष था इन हरिजनों का? यही न कि सरकारी रेट पर मजदूरी मांग रहे थे? पर शायद था तभी तो जिन्दा जला दिए गए और जिन्होंने जलाया उन पर कोई उंगली उठाने वाला तक नहीं। बेचारे बिसू ने उंगली उठाने की कोशिश की तो हमेशा के लिए चुप कर दिया गया उसे, उसकी लाश पुलिया पर पड़ी मिली।" राजनीति के रक्तरंजित इतिहास में ऐसी घटनाएं आम देखी जा सकती हैं।

महाभोज उपन्यास में गुनाह कोई और करता है और सजा कोई और पाता है। यही सब मन्नू भंडारी ने इस उपन्यास में बिंदा के माध्यम से व्यक्त किया है। असली गुनहगार जोरावर है पर बिंदा को गुनहगार साबित करके उसे बिसू का हत्यारा मान लिया जाता है। सरोहा ही नहीं देश में जहां कहीं भी बिसू की हत्या होती है वहां मूलभूत विश्वासों की ही हत्या होती है। उसमें शोषण की अनेक राक्षसी आकृतियां प्रकट होकर अपना विकराल रूप दिखाती हैं। महाभोज में समाजवाद असामाजिक तत्वों की शक्ति बढ़ाता है। मन्नू भंडारी ने प्रस्तुत उपन्यास में शोषित एवं दलितों की उस स्थिति को उजागर किया है जिसका राजनीति के साथ कोई सरोकार जुड़ ही नहीं पाता है।

इस प्रकार दलित चेतना का केंद्रबिंदु आठवीं सदी के उपन्यासों से ही प्रतिबिंबित होता है। विवेचकों की दृष्टि में महाभोज राजनीतिक उपन्यास है, परंतु यह उपन्यास दलित जीवन का मार्मिक व यथार्थ चित्रण भी करता है। यह राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं के साथ दलित वर्ग की समस्याओं को भी व्यक्त करता है। लेखिका ने सरोहा गांव के एक दलित युवक बिसेसर की जमींदार जोरावर द्वारा की गई हत्या की पृष्ठभूमि में एम.एल.ए. का चुनाव और इस चुनाव में राजनीतिक जीवन में आई मूल्यहीनता तथा अवसरवादी मानसिकता को प्रस्तुत किया है।

बिसेसर की लाश सड़क के किनारे पुलिस को पड़ी मिलती है। एक हरिजन युवक की हत्या का आरोप हरिजन जाति के ही एक उभरते युवा बिंदा पर लगाया जाता है। अपने ही देश के राजनेता अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए एक दलित युवक का राजनीतिक शोषण करते हैं। अपनी जाति के शोषण के खिलाफ लड़ने वाले, हरिजन, सामान्य जन, दलित व मजदूरों के हक के लिए लड़ने वाले बिंदा की आवाज को बंद करने की साजिश रची जाती है। महाभोज में नेता बिंदा जैसे संघर्षशील व्यक्ति की आवाज हमेशा के लिए बंद करने का षड्यंत्र रचते हैं।

'महाभोज' उपन्यास में दलित चेतना के दो बिंदु हैं– शिक्षित और आधुनिक चेतना से संपन्न बिंदा और बिसेसर जैसे युवक। बिसेसर और बिंदा नई चेतना के ही नहीं बल्कि दलित चेतना के भी प्रतीक हैं। वे बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर के सिद्धांत को अपनाते हैं। उन दोनों में अपनी जाति के प्रति स्वाभिमान की झलक मिलती है। वे दलितों के उत्थान के लिए कार्य करते हैं। अपनी जाति के लिए मर मिटने वाला बिसेसर जब शहर से शिक्षा

प्राप्त करके गांव आता है तो अपनी जाति के दलितों को शिक्षित करने के लिए स्कूल चलाता है। और घर–घर जाकर भी स्वयं पढ़ाता है। उनका मानना था कि शिक्षित बने बिना, स्वाभिमानी बने बिना कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। आज हमारे देश में दलितों की ऐसी दयनीय और आर्थिक स्थिति खराब है कि वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिला पाने में असमर्थ हैं। मन्नू भंडारी ने इन दलितों की स्थिति के द्वारा हमारे समाज को यह संदेश दिया है कि जो काम बिसेसर ने अधूरा छोड़ा है उसे पूरा करने की हमारी जिम्मेदारी है। दलितों को सम्मान का जीवन जीने का अधिकार मिले इसके लिए साहूकारों और जमींदारों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाले बिसेसर के बारे में महेश शर्मा का कहना है– "भड़काया नहीं करता सर... उन्हें केवल अवेयर करता था अपने अधिकारों के लिए। जैसे– सरकार ने जो मजदूरी तय की है वह जरूर लो... नहीं दे तो काम मत करो।"

महात्मा गांधी ने देश के अछूतों व दलितों के लिए हरि (भगवान) के जन अर्थात 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया था। उनका राम–राज्य स्थापित करने का सपना था। स्वतंत्रता के बाद राजनीति में किसी दलित का मरना, सत्तासीन, विरोधी दल, पत्रकार मीडिया, पुलिस सबके लिए त्योहार जैसी खुशी दे जाता है। मन्नू भंडारी के इस उपन्यास 'महाभोज' में अपराध के दो प्रतीक हैं, एक दा साहब हैं जो अपने चेहरे पर मानवीयता का नकाब चढ़ाए हुए हैं और दूसरा जोरावर है एक क्रूर व भ्रष्ट जमींदार के रूप में। आज राजनीति के अपराधीकरण पर सभी लोग चिंता व्यक्त करते हैं लेकिन उसे रोकने का प्रयास कोई नहीं करता।

'महाभोज' में जहां एक ओर दलितों के उत्थान के लिए लड़ने वाले बिसेसर और बिंदा हैं तो दूसरी ओर हीरा जैसे पुरानी पीढ़ी के लोग जो समझौते की परंपरा सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर निभाते हैं। गरीबी और शोषण के साये में जीने वाले वे मनुष्य नहीं केवल वोटर बनकर रह गए हैं। सरकारी नियम के अनुसार मजदूरी का प्रश्न तो अलग रहा, यदि वे जोरावर सिंह जैसे साहूकार व जमींदार के कहने से काम नहीं करते तो उन्हें प्रताड़ित किया जाता है, उनके घर जला दिए जाते हैं। इनके विरुद्ध जो भी गवाही देता है तो उसके साथ भी वैसा ही सुलूक किया जाता है जो अन्य दलितों के साथ किया जाता है। पुलिस भी दलितों एवं पीड़ितों को परेशान करती है।

"गांव की सरहद से जरा हटकर जो हरिजन टोला है, वहां कुछ झोंपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपड़ियां राख में बदल चुकी थीं और आदमी कबाब में।" केस दर्ज कराने के लिए लोग थाने पहुंचते हैं तो वहां से जवाब मिलता है, "थानेदार के आने पर ही मौके पर आएंगे और तहकीकात होगी। इसके बाद पता नहीं इन गांव वालों को कौन–सा जहरीला सांप सूंघ गया कि सबके मुंह सिल गये। बस सबकी सांसों के साथ निकला हुआ एक गुस्सा, एक नफरत–भरा तनाव बनकर हवा में यहां से वहां तक सनसनाता रहा।"

बिंदा पुलिस के दमन व जमींदारों के शोषण के विरोध में निडरतापूर्वक सार्वजनिक बयान देता है– "अरे दा साहब, काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहां? हरिजनों को जिंदा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस देखती रही और महीने भर से खुद

तमाशा कर रही है। हुआ आज तक कुछ?" जब सबूत–प्रमाण की बात उठायी जाती है तो सच्चाई के लिए संघर्ष करने वाला बिंदा उसका जवाब सटीक देता है, "कौन देगा गवाही मरना है किसी को शिनाख्त करके? चार दिन यहां आकर रह लीजिए.... पता चल जाएगा कि कैसा आतंक है।"

समाज में समानता और सम्मान की भावना के साथ राजनीतिक चेतना आने के बाद भी शहरों एवं ग्रामीण देहातों में भूमिहीन गरीब दलितों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति ज्यों की त्यों है। उसमें कोई बदलाव नहीं आया है। जमींदार वर्ग उनको राजनीतिक अधिकारों का उपभोग भी नहीं करने देते। चुनावों में उन्हें वोट डालने तक की स्वतंत्रता नहीं होती अगर वोट डाले भी जाते हैं तो जमींदारों की इच्छा के अनुसार। वे अपनी मर्जी से अपने पसंदीदा उम्मीदवार को वोट नहीं डाल सकते। जोरावर जैसे व्यक्ति का उपयोग आज हर राजनीतिक दल कर रहा है। जोरावर दा साहब से कहता है– "इसमें जिद्द की बात क्या हुई, दा साहब? इन हरिजनों के बाप–दादे हमारे बाप–दादों के सामने सिर झुकाकर रहते थे। झुक–झुक कर पीठ कमान की तरह टेढ़ी हो जाती थी। और ये ससुरे सीना तानकर आंख में आंख गाड़कर बात करते हैं– बरदाश्त नहीं होता यह सब हमसे।"

बिसेसर के असली हत्यारे जमींदार जोरावर सिंह और घाघ राजनीतिज्ञ दा साहब के सिद्धांत में सिर्फ व्यवहार का ही अंतर दृष्टिगोचर होता है। इन लोगों का एक ही उद्देश्य होता है कि कोई दलित और मजदूर सत्ता के सामने चुनौती बनकर न खड़ा हो जाए। दा साहब और उच्च वर्ग के लोगों को दलितों की बराबरी करना कतई सहन नहीं है। राजनीति में वे उन्हें बराबरी का अधिकार देने को तैयार नहीं हैं। ऐसे राजनेता और बाहुबली लोग स्वयं को हर प्रकार के नियम, कानून, विधि–विधान से ऊपर समझते हैं। सारी नौकरशाही इनके इशारों पर नाचती है। वे जब चाहे इन्हें मरवा सकते हैं, जब चाहे जेल में डलवा सकते हैं। आज के भारत देश का यही सच्चा आइना है।

दलित चेतना के निर्माण का प्राथमिक बिंदु है आत्मसम्मान, गरिमा और मौलिक अधिकारों की प्राप्ति, जो ज्योतिवा फुले और भीमराव अंबेडकर के विचार और दर्शन पर आधारित है। भारतीय समाज में व्याप्त विषमता, अन्याय, घृणा और शोषण के विभिन्न रूपों को समाप्त कर स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा एवं करुणा की स्थापना दलित चेतना का केंद्रीय स्वर है, जो बौद्ध दर्शन से प्रेरणा व ऊर्जा प्राप्त करता है। दलित चेतना का एक अर्थ 'मैं कौन हूं', 'मेरे अधिकार क्या हैं?' से भी है, जो अस्मिता बोध में रूपांतरित होता है। भारतीय हिंदू व्यवस्था में थोपे गए हीनता बोध की छवि को तोड़ना दलित चेतना का अहम हिस्सा और कर्तव्य है।

'महाभोज' उपन्यास का सरोहा गांव भारत के अधिकांश गांवों के समान ही है जिसमें सामंती सभ्यता का साम्राज्य है। इस गांव में जमींदार हरिजनों एवं खेतीहर मजदूरों का शोषण करते हैं तथा उन्हें प्रताड़ित करते हैं। इस शोषण और अमानवीय कृत्य के विरुद्ध एक हरिजन दलित युवक बिसेसर आवाज उठाता है तो उसकी हत्या करवा दी जाती है और दूसरी आवाज उठाने वाले बिंदा को षड्यंत्र रचकर जेल में डाल दिया जाता है।

बिसू की हत्या और उसके हत्यारों के बारे में बिंदा द्वारा दा साहब को स्पष्ट बताने के बावजूद उससे प्रमाण मांगा जाता है। जब बिंदा सारे सुबूत और प्रमाण जुटाकर दिल्ली जाकर सरकार और जन प्रतिनिधियों के सामने रखना चाहता है तो भ्रष्ट प्रशासन सत्य और न्याय का गला घोंट देता है और बिसेसर की हत्या का झूठा आरोप लगाकर बिंदा को ही हत्यारा सिद्ध करके गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाता है। पुलिस के बेंतों और जूतों की ठोकरों के बीच बिंदा चिल्लाकर यही कह रहा है– "मैंने बिसू को नहीं मारा... मैं बिसू को मार ही नहीं सकता। मुझे तो उनकी आखिरी इच्छा पूरी करनी है। मैं उसे पूरी करके ही रहूंगा.... चाहे जैसे भी हो, जो भी हो....।" पुलिसवालों की मार की रफ्तार और बढ़ जाती है। लेकिन बिंदा का चिल्लाना बंद नहीं होता– "मार डालो, मार डालो। तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन देखना बिसू की इच्छा कोई नहीं मार सकता।"

महाभोज में भारतीय समाज और देश में दलितों की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। बिसेसर और बिंदा जैसे पात्र दलितों में चेतना जगाने का कार्य तो करते ही हैं साथ ही सक्सेना जैसे ईमानदार व्यक्ति भी हैं। 'महाभोज' उपन्यास में उभरती हुई दलित चेतना के भावी आयामों को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में राजनीतिक उठापटक का चित्रण हुआ है साथ ही यह भी चित्रित हुआ है कि राजनीति में हमेशा निम्न तथा दलित वर्ग को मोहरा मानकर उच्च वर्ग के लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। बिसू की हत्या दलित वर्ग में निर्मित हुई राजनीतिक चेतना का परिणाम है। बिसू के मित्र बिंदा के शब्द बार–बार गूंजते हैं– "नहीं, नहीं! उसे मारा गया! क्योंकि वह जिन्दा था! जिन्दा रहने का मतलब समझते हैं न आप? लोग भूल गये हैं जिन्दा रहने का मतलब, इसीलिए पूछ रहा हूं। जो जिन्दा हैं, वे अब जी नहीं सकते इस देश में। मार दिये जाते हैं कुत्ते की मौत! जैसे बिसू मार दिया गया।" इस प्रकार दलित वर्ण में आई राजनीतिक चेतना के कारण ही बिंदा गांव के हरिजन मजदूरों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करता है। आज भी शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाले दलित युवकों की आवाज दबाने के लिए अनेक राजनीतिक षड्यंत्र रचे जाते हैं।

'महाभोज' मन्नू भंडारी का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में समकालीन राजनीति में चल रही कूटनीति का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसीलिए महाभोज को राजनीतिक उपन्यास कहा जाता है। सन् 1977 में आपातकाल हटने के बाद हुए चुनावों में जनता पार्टी अस्तित्व में आई थी और उसकी सरकार बनी थी। उसकी शासन व्यवस्था में हरिजनों पर बहुत अत्याचार हुए थे। उस घटना ने मन्नू भंडारी को इतना व्याकुल कर दिया कि उसी पृष्ठभूमि पर उन्होंने 'महाभोज' उपन्यास की रचना कर डाली। 'महाभोज' के बारे में माधुरी वाजपेयी ने लिखा है– "इस उपन्यास का कथानक सामाजिक ही है; किंतु परिवेश राजनीतिक होने की वजह से इसे राजनीतिक उपन्यास कहना अधिक उचित होगा। इस उपन्यास में लेखिका ने गांवों में व्याप्त सामंती सभ्यता का साम्राज्य और उसके द्वारा किसान–मजदूर वर्ग पर किए जाने वाले अत्याचार तथा तत्कालीन शासन–व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण बखूबी किया है। इस प्रकार यह उपन्यास समकालीन राजनीतिक परिवेश पर आधारित राजनीतिक उपन्यास है।"

सत्ता के पाखंड, सामंती शक्तियों पर उसकी निर्भरता और उसके द्वारा नौकरशाही और मीडिया का अपने निहित स्वार्थ में इस्तेमाल की हकीकत के लिहाज से उपन्यास का पात्र मुख्यमंत्री दा साहब आज भी बेहद जाना–पहचाना चरित्र लगता है। एक ओर वह वोट के लिए खेत मजदूरों और दलितों के विकास के लिए योजनाओं की घोषणा करता है, तो दूसरी ओर वह उनका दमन–उत्पीड़न करने वाली सामंती शक्तियों का हितैषी बना रहता है। पक्ष–विपक्ष के राजनीतिक दलों का गरीब व मेहनत करने वाले वर्गों के साथ सिर्फ चुनावी फायदे और नुकसान का रिश्ता दिखता है। कोई उनकी जिंदगी को बदलने का प्रयास नहीं करता, उनकी आर्थिक स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है। दोनों सामंती शक्तियों के प्रतिनिधि जोरावर सिंह को अपने पक्ष में इस्तेमाल करने की कोशिश करते हैं।

वैचारिक तौर पर 'महाभोज' अत्यंत गंभीर, यथार्थपरक उपन्यास है। भारत के बिहार प्रांत की राजनीति के लिए तो मानो आज भी यह एक प्रभावशाली आईना है। 'महाभोज' में बिसू नामक एक दलित युवक जो खेत मजदूर है, उसकी हत्या का प्रसंग है। जो मजदूरों को उनके अधिकारों के लिए जागरूक कर रहा था और आगजनी के जरिये जलाकर मार दिए गए गरीबों, दलितों के हत्यारों को सजा दिलाने के लिए संघर्ष कर रहा था। उसकी हत्या के बाद उपन्यास में मुख्यमंत्री दा साहब और विपक्षी पार्टी के सुकुल जी उप चुनाव में दलितों को अपने–अपने पक्ष में संगठित करने की हर संभव कोशिश करते हैं। इस कोशिश में सत्ता मीडिया और नौकरशाही का खुलकर इस्तेमाल करती है। हत्या के जिस सच को लेकर बिसू के दोस्त बिंदा और महेश संघर्ष करते हैं, दा साहब के इशारे पर उस सच को ही पलट दिया जाता है और बिंदा को ही बिसू का हत्यारा साबित कर दिया जाता है। अपने हक व अधिकारों के लिए आंदोलन करने वालों को ही गुनहगार साबित करके जेल में डाल दिया जाता है। थानेदार, अखबार का संपादक, डी.आई.जी. और पक्ष–विपक्ष के नेता सबके चरित्र को उपन्यास में उजागर किया गया है। मौजूदा तंत्र समाज के गरीब व्यक्ति के प्रति कितना निर्मम है, इसे इस उपन्यास में बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। अपने साथी बिसेसर के हत्यारों को सजा दिलाने के लिए संघर्ष कर रहा बिंदा कहता है– "कुछ नहीं करेगी यहां की पुलिस। कोई कुछ नहीं करेगा।... अखबार वालों के पास गये, छापना तो दूर, बात तक नहीं की। आगजनी की कइसा बयोरा छापा था.... अब जाने कउन सांप सूंघ गया है! सब के सब बिक गये हैं।"

गांव में जाति और वर्ग विषय पर रिसर्च करने पहुंचे महेश शर्मा से बहस करते हुए वह दो टूक पूछता है– "जरा बताओ, कउन मिटाएगा अमीर–गरीब का ई भेद? तुम तो डेढ़ महीने से हियां साइकिल पे घूम–घूम के अउर किताबें पढ़–पढ़ के गांव जानि रहे हो।... थीसस लिखोगे गांव पे।... अइसे जाना जाता है गांव? अरे गांव जानना है तो जुड़ो हियां के लोगों के साथ... सामिल होओ उनके दुख–दरद में! लिखो कि सरकारी रेट पे मजूरी मांगने भर से जिंदा आदमियों को भून के राख बना दिया। अउर जब इस जुलुम के खिलाफ किसी ने आवाज उठाये की कोसिस की तो मार दिया उसे....।"

'महाभोज' उपन्यास में बुद्धिजीवियों और सामान्य नागरिकों को जन संघर्षों से जुड़ने का संदेश दिया गया है। महेश शर्मा एस.पी. सक्सेना से कहता है– "लेकिन हमें परमिशन

नहीं है सर कि हम गांव की समस्याओं और लोगों के साथ इनवॉल्व हों। फेलोशिप की पहली शर्त होती है यह। यह सारी की सारी एजुकेशन अज्ञान में रखना चाहती है हमको... नहीं चाहती कि हम अपने आस–पास की असलियत को जानें, उससे जुड़ें। फार्म में भरकर देना होता है हमको कि हम सिर्फ देखेंगे... तटस्थ होकर। जो कुछ गलत है, उस पर रिएक्ट नहीं करेंगे... खून नहीं खौलने देंगे अपना।... क्या मतलब ऐसी एजुकेशन का।"

उपन्यास के अंत में जब बिसेसर के दोस्त बिंदा को पुलिस यातना दे रही है और सरकारी तंत्र से जुड़े सभी लोग मौज–मस्ती में व्यस्त हैं, तब वह सवाल करता है कि क्या इन हालात में बिना शामिल हुए रह सकता है कोई? और इसी बिंदु पर बुनियादी संघर्षों के साथ जुड़ाव की जरूरत के संदेश के साथ उपन्यास का अंत होता है।

संघर्षमय सामाजिक चेतना के सर्जक भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, 1915 को रावलपिंडी (अब पाकिस्तान) में हुआ था। विभाजन से पूर्व आप अवैतनिक शिक्षक एवं व्यवसायी थे। विभाजन के उपरांत भारत आकर सृजन कार्य आरंभ किया। भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से जुड़ने के बाद इन्होंने अंबाला व अमृतसर में अध्यापन कार्य किया और फिर दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने।

हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के पक्षधर, मानवीय मूल्यों के हिमायती एवं प्रेमचंद की परंपरा के अग्रणी लेखक आदि के रूप में चर्चित भीष्म साहनी 1957 से 1963 तक फॉरेन लैंग्वेज पब्लिकेशन हाउस मास्को में अनुवादक की भूमिका में रहे जहां उन्होंने रूसी साहित्यकारों की कृतियों का हिन्दी रूपांतर किया। वर्ष 1965 से 1967 तक 'नई कहानियां' नामक पत्रिका का संपादन किया। भीष्म साहनी प्रगतिशील लेखक संघ एवं एफ्रो–एशियायी लेखक संघ से संबद्ध रहने के अलावा 1993 से 1997 तक साहित्य अकादमी के कार्यकारी समिति के सदस्य भी रहे। वर्ष 1975 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार, पंजाब सरकार का शिरोमणि लेखक अवार्ड, 1980 में एफ्रो–एशियन राइटर्स एसोसिएशन का लोट्स अवार्ड, 1983 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा 1998 में भारत सरकार के पद्मभूषण सम्मान से अलंकृत किया गया। तमस, हानूश, कबिरा खड़ा बजार में, माधवी, भाग्य रेखा, निशाचर, कुन्तो, झरोखे, बसन्ती जैसी कालजयी कृतियां भीष्म साहनी ने हिन्दी साहित्य संसार को सौंपी। 11 जुलाई, 2003 को आपका देहावसान हो गया।

'कबिरा खड़ा बजार में' भीष्म साहनी की लोकप्रिय नाट्य कृति है, जो कबीर के व्यक्तित्व पर आधारित है। दृढ़, उग्र, बेपरवाह, मस्तमौला कबीर का व्यक्तित्व सदियों से भारतीय जनमानस को प्रेरित–प्रवाहित करता रहा है। अपने समय की तानाशाही, धर्मांधता, बाह्याडंबर और मिथ्या धारणाओं के खिलाफ अनथक संघर्ष करने वाला यह किरदार हमारे बीच आज भी स्थायी व प्रेरक मूल्य की भांति स्थापित है। उनकी निर्मम अक्खड़ता, फक्कड़पन युक्त मस्ती व युगप्रवर्तक सोच साहित्यिक–सामाजिक जड़ता को तोड़ने वाली थी जिसके जरिए उन्होंने तमाम मोर्चों पर संघर्ष किया। भीष्म साहनी की यह नाट्य कृति मध्ययुगीन परिवेश में संघर्षरत कबीर को उनके पारिवारिक–सामाजिक संघर्षों सहित आज भी प्रासंगिक बनाती है।

इस इकाई में हम भीष्म साहनी की नाट्य कला पर दृष्टिपात करते हुए 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रतिपाद्य स्पष्ट करेंगे और साथ ही इस नाट्य कृति का समीक्षात्मक अध्ययन भी करेंगे।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भीष्म साहनी की नाट्य कला को समझ पाएंगे;
- 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रतिपाद्य स्पष्ट कर पाएंगे;
- 'कबिरा खड़ा बजार में' की समीक्षात्मक विवेचना कर पाएंगे।

3.2 भीष्म साहनी की नाट्य कला

भीष्म साहनी प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, संपादक और अनुवादक के रूप में स्थापित साहित्य–सर्जक हैं। इनकी नाट्य कला संदर्भित विशिष्टताओं की विवेचना करने से पूर्व इन्हें एक नाटककार के रूप में देख लेना समीचीन रहेगा।

3.2.1 भीष्म साहनी नाटककार के रूप में

भीष्म साहनी की प्रथम नाट्य कृति 'हानूश' (1977) है। हानूश के बाद 'कबिरा खड़ा बजार में' (1981), 'माधवी' (1984) एवं 'मुआवजे' (1993) लिखकर आपने जहां नाटक की दुनिया में अपना अहम योगदान दिया, वहीं रंगमंच और रंगदर्शन को सफल कृतियां भेंट कीं।

शब्द साधक जिस देश–काल–परिवेश में जीता है, उसकी समस्याएं और विसंगतियां सवाल बनकर उसके अंतर्मन को कुरेदती हैं। दूसरी साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा नाटककार को विशेष रूप से इनसे जूझना पड़ता है; खासकर ऐसे प्रश्नों से जिनका तादात्म्य समूह से हो। आम–अवाम से हो। नाटककार को जीवन–जगत की उन स्थितियों को नाटक में स्वीकार करना पड़ता है जो अधिकाधिक दर्शकों को अपनी अनुभूति लगें।

नाट्य कृति की रंग–सापेक्षता इस बात में है कि नाटक की कथावस्तु में उपलब्ध कथ्य, नाटककार का अनुभूत सत्य मंचीय साक्ष्य से मूर्तता प्राप्त करती है और इस तरह मंचीय–माध्यम से जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करती है। दिल्ली की प्रसिद्ध नाट्य संस्था 'अभियान' द्वारा राष्ट्रीय नाट्य समारोह में 'हानूश' के अभिनय से यह प्रमाणित हुआ था कि इस नाटक में मंच–सापेक्षता के तत्व एवं रंगधर्मिता की विद्यमानता है।

'हानूश' नाटक कलाकार (नायक) की दुर्दमनीय स्थिति और उसकी निरीहता को रूपायित करने के हेतु से धर्म व शासन के गठबंधन के साथ सामाजिक संघर्ष की अभिव्यंजना के मकसद से लिखा गया है। भीष्म साहनी ने स्वयं 'दो शब्द' में यह स्वीकार किया है कि "यह नाटक एक मानवीय स्थिति को मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।" समस्त नाटकीय घटनाओं के आयोजन में केवल एक बात यथार्थ है– प्राग की मीनारी घड़ी और घड़ीसाज का विचित्र पुरस्कार। शेष सभी कुछ भीष्म साहनी की कल्पना द्वारा सृजित है। अपनी परिकल्पना में नाटककार समूचे घटनाक्रम को इस रूप में जोड़ सका कि वह मध्ययुगीन परिवेश में भी आधुनिक जीवन व जगत के मूल्यों को आवृत्ति दे। यह प्रशंसनीय लाघव है।

एक नाटककार के रूप में भीष्म साहनी की दूसरी प्रस्तुति है– 'कबिरा खड़ा बजार में'। यह एक ऐसी अहम नाट्य कृति है, जिसमें वे एक स्तर पर कबीर के तत्कालीन समाज, उस समाज में उनके निर्भय, सत्यभाषी एवं अन्याय के खिलाफ लड़ने वाले प्रखर व्यक्तित्व की पुनर्रचना करते हैं तो दूसरे स्तर पर वह हमारे समकालीन समाज, उसमें युद्धरत संप्रदाय, फासिज्म व बाह्याडंबर विरोधी ताकतों की अहम भूमिका का संकेत भी देते हैं।

भारतीय नाट्यशास्त्र की प्राचीन शब्दावली में कहें तो 'अभिधा के स्तर पर' कबीर के बेपरवाह, सुदृढ़, उग्र व तेजस्वी सामाजिक व्यक्तित्व को चित्रित करने वाला एक ऐतिहासिक नाटक है– कबिरा खड़ा बजार में। लक्षणा एवं व्यंजना के स्तरों पर यह हमारे वर्ग–विभक्त, जाति व धर्म विभक्त, अंतर्विरोधपूर्ण और भेदभाव–ग्रस्त विषम समाज के समकालीन संदर्भों को ध्वनित करने वाला आधुनिक नाटक है।

'कबिरा खड़ा बजार में' की कथावस्तु यूं तो कबीर के समूचे जीवन पर आधारित है किंतु भीष्म साहनी को एक सफल नाटककार सिद्ध करता है उनका रचना कौशल। नाटक का पात्र दिल्ली का शहंशाह सिकन्दर लोधी है जो वर्तमान की निरंकुशता व तानाशाहीपूर्ण सत्ता का प्रतीक है। अंधा भिखारी आधुनिक आम जनों का प्रतीक है जो आए दिन किसी न किसी तरह का जोर–जुल्म झेलता है। नाटक वर्तमान की भी उन्हीं चुनौतियों को प्रस्तुत करता है जिनका मुकाबला सच्चे ईमानदार, पाखंड विरोधी, सहज–स्वाभाविक, फकीर व्यक्ति कबीर को करना पड़ा था।

नाटक में कबीर रैदास, सेना, पीपा, वशीरा की टोली ऐसे आधुनिक प्रतिबद्ध और प्रगतिशील लोगों के अग्रिम दस्ते की ओर हमारा ध्यान खींचती है जो सबकुछ दांव पर लगाकर मौजूदा व्यवस्था को संपूर्ण पाखंड व शोषण तंत्र का भंडाफोड़ करने हेतु कटिबद्ध हैं। यह नाटक ऐतिहासिक होकर भी अत्यंत आधुनिक है। यह भीष्म साहनी के अप्रतिम नाटककार के व्यक्तित्व का प्रमाण है। यह नाटक समाज के फलक पर और व्यक्ति के मन

में चल रहे द्वंद्वों–अंतर्विरोधों की कलात्मक और अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का एक सशक्त और अत्यंत प्रासंगिक दस्तावेज है।

सफल नाटककार के रूप में भीष्म साहनी की तीसरी प्रस्तुति 'माधवी' है। यह नाटक महाभारत की अंतः कथाओं पर आधारित उस प्रसंग का उद्घाटन करता है जब महाराज ययाति अपना राजपाट त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम के लिए प्रस्थान करते हैं। इसी समय विश्वामित्र का शिष्य गालव, गुरुदक्षिणा में मांगे गए आठ सौ अश्वमेधी घोड़ों की खोज में भटकता हुआ ययाति के पास पहुंचता है। वे अपनी इकलौती बेटी माधवी को यह कहकर उसे सौंपते हैं कि जिस भी राजा से घोड़े मिले, उनके बदले वह माधवी को राजा के पास छोड़ देगा। माधवी क्रमशः तीन–तीन राजाओं के रनिवास में रहकर और फिर विश्वामित्र को समर्पित होकर गालव को मुक्ति दिलाती है। अंततः गालव भी माधवी को ठुकरा देता है।

अनूठे व मर्मस्पर्शी घटनाचक्र में गुजरते हुए इस नाटक के प्रधान पात्र माधवी, गालव, ययाति, विश्वामित्र व अनेक राजा अपनी–अपनी भूमिका निभाते हैं। वे एक विकट हृदयग्राही मानवीय परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में नए–नए आयाम ग्रहण करते हैं। केन्द्र में ययाति–पुत्री माधवी है जो लगभग एक अलौकिक मिथकीय परिवेश में रहते–बसते हुए भी अत्यंत सजीव, प्रासंगिक एवं आकर्षक बनकर उभरती है।

विश्वामित्र की दक्षिणा रूपी जिद पूरी होती है। गालव को मुक्ति मिलती है। ययाति महान दानी सिद्ध होते हैं। राजा माधवी से पुत्र प्राप्त करते हैं। लेकिन माधवी को क्या मिला? उसका क्या हुआ? जिस गालव के लिए उसने अपने को चार–चार पुरुषों में बांट दिया, अंततः उसी ने माधवी के प्रणय को ठुकरा दिया। एक सफल नाटककार के रूप में नारी जीवन की त्रासदपूर्ण स्थिति को साकार किया है यहां भीष्म साहनी ने।

एक नाटककार के रूप में भीष्म साहनी का अंतिम नाटक 'मुआवजे' भी मील का पत्थर साबित हुआ है। दंगों की आशंकित और ठोस पृष्ठभूमि पर सृजित आधुनिक संवेदना से युक्त इस नाटक में शासकों की विवेकहीनता और अलगाव, मध्यमवर्गीय लोगों की अकर्मण्यता तथा अत्यंत गरीबों की त्रस्त मानसिकता के परिणामतः हुए मानवीय मूल्यों के क्षरण पर चिंता व्यक्त की गई है। नाटक का दृश्यगत तथ्य गतिशील जीवन की अपेक्षा विसंगति व विडंबना, इंच–इंच रेंगता जीवन, आधुनिक त्रासदी को रेखांकित करते हुए वितृष्णा और विक्षोभ पैदा कर देता है।

'मुआवजे' में भीष्म साहनी ने जीवन को समग्रता की दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें शासक, प्रशासक, पूंजीपति, बुद्धिजीवी, मध्यवर्गीय दुकानदार और आधारहीन–अत्यंत दीन पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं। शहरों के बाहर आवासहीनता की स्थिति में टिके हुए समाज के व्यापक और गहरे चित्रण के लिए पुरुष पात्रों में युवा व बूढ़ों के साथ–साथ बच्चे तथा स्त्री पात्रों को भी सक्रिय दिखाया गया है। सांप्रदायिक संकीर्णता, अवसरवादी व खोखली प्रशासनिक व्यवस्था के फलस्वरूप दूषित और भ्रष्ट परिवेश में जी रहे समाज को सचेत करने के लिए भीष्म साहनी का यह नाटक एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति करता है। इससे उसकी सामाजिक सरोकारिता–प्रतिबद्धता का स्वस्थ स्वरूप उभरकर प्रत्यक्ष होता है।

इस प्रकार भीष्म साहनी के नाटक लेखन कर्म पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे एक सफल नाटककार के रूप में रंगमंचीय दुनिया में उभरते हैं।

3.2.2 भीष्म साहनी की नाट्य कलागत विशिष्टताएं

भीष्म साहनी ने मार्क्सवाद से व्यक्ति व समाज के अंतर्विरोधों को समझा–परखा एवं प्रयोग किया। बावजूद इसके मार्क्सवाद का प्रचार उनका लक्ष्य नहीं रहा। इस चिंतनधारा ने तो उनमें वातावरणगत सच्चाइयों को जानने और साहित्य में उनकी अभिव्यंजना की प्रेरणा भरी है। यह चिंतन–दर्शन भीष्म साहनी से अभिन्न है। फलतः इस विचार–दृष्टि से अभिप्रेरित होकर उनके नाटक व्यक्ति व समाज केन्द्रित परिवेशगत यथार्थ के पर्याय बने हैं। यह यथार्थ देशकाल निरपेक्ष होकर, मानवीय संवेदनाओं के द्वार से निकलकर वर्तमान में भी हमारे समक्ष उपस्थित है।

अमूमन उनके नाटकों के प्रसंग इतिहास व महाभारत कालीन हैं किंतु अपने समय एवं स्थान की विडंबनापूर्ण स्थितियां सहजतः उनसे संबद्ध होकर नाटककार की देशकाल सापेक्ष दृष्टि को प्रमाणित करती हैं। रचनाधर्म विषयक भीष्म साहनी की धारणा है कि अपने समय व काल से परे जाकर किसी ने नहीं जीया, चाहे वह कोई कलाकार हो, बढ़ई हो या डॉक्टर। यानी इस पहलू पर लेखक भी वैसा ही सामान्य प्राणी है, जैसा अन्य कोई भी प्राणी। नाट्य सर्जक की भूमिका के संदर्भ में भीष्म साहनी अपनी आत्मकथा 'आज के अतीत' में लिखते हैं– "नाट्य लेखन में ही क्यों, किसी भी विधा में लिखने वाले की नियति यही है कि वह अपने बलबूते पर जैसा लिखना चाहता है लिखे, जो जानकारी हासिल करना जरूरी समझता है हासिल करे, पर इसके बाद फल की इच्छा न करे। फल की इच्छा करना ही अपनी मौलिकता से समझौता करना है। लेखक सीखता तो सबसे है पर चलता अपने ही रास्ते है। यही उसकी सही भूमिका है। हां, इसमें संदेह नहीं कि मंचन कला की जानकारी नाटक लेखन में निश्चय ही सहायक सिद्ध होती है पर तभी जब वह उसकी सर्जनात्मक कल्पना को कोई नई स्फूर्ति दे, न कि उसके मस्तिष्क का बोझ बन जाए।"

भीष्म साहनी के नाट्य कलागत वैशिष्ट्य की आधारभूत बातों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

- **काल–परिवेशगत सत्य एवं संघर्ष–बोध**

समय व परिवेशगत सत्य तथा संवेदना का समावेश करते हुए भीष्म साहनी अपने नाटकों में संघर्ष बोध की सृष्टि करते हैं। भीष्म साहनी ने 'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बजार में' सन्निहित किए गए सामयिक संदर्भों का संकेत स्वयं दिया है। उनके अनुसार, "कभी–कभी हमें कोई मध्ययुगीन स्थिति ज्यादा आकृष्ट करती है, साथ ही उस आकर्षण के पीछे हमारे अपने अवचेतन से जुड़ती आज के जीवन की समस्याएं भी होती हैं। 'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बजार में' की परिस्थिति आज की परिस्थिति से भी जुड़ती है।"

सन् 1977 में लिखे गए 'हानूश' नाटक के कथा–प्रसंग, पात्र एवं परिवेश विदेशी हैं। यह स्वरूप सत्ता के शिकंजे में कसे कलाकार के शोषण–उत्पीड़न का चित्रण करता है।

एक सहज व महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि भीष्म साहनी ने 1960 में चेकोस्लोवाकिया यात्रा के दौरान जो अनुभव प्राप्त किये, वे संवेगात्मक प्रसंग उनके अवचेतन से 1977 में क्यों प्रस्फुटित हुए? इस मुद्दे के आलोक में 'हानूश' की लेखन प्रासंगिकता को देखने पर हम पाते हैं कि आपातकालीन भारत में कलाकार की उत्पीड़ित–शोषित नियति ने लेखक को आंदोलित किया और समसामयिक अनुभूति के स्तरों पर सृजनधर्मी हानूश की दुर्गति के समानान्तर उसने अपनी अभिव्यक्ति दी। उन्होंने समकालीन कला तथा कलाकार के अस्तित्व, अस्मिता–संकट को पहचाना। फलतः उनके अवचेतन में छुपी सत्ता शासन के हाथों कलाकार की दुर्नियति हानूश के जीवन–चरित्र में आकार लेकर विचारयोग्य सवाल खड़े कर गई। अपने समय और परिवेश में मौजूद सवालों से कोई भी युग दायित्वों के प्रति सजग कलाकार मुंह नहीं मोड़ सकता। भीष्म साहनी के लिए तो कलाकार की कसौटी ही यही है कि वह कला–दर्पण में अपने समय के जीवन, विरोधाभासों–विसगतियों को उकेरने में कहां तक सफल होता है। हानूश की रचना प्रासंगिकता पर यह प्रश्न साभिप्राय है और इस नाट्य कृति को युगीन परिप्रेक्ष्य में अर्थवत्ता देने वाला भी।

भीष्म साहनी के प्रथम नाटक की बात करें तो 'हानूश' के संघर्ष की प्रक्रिया घड़ी निर्माण के साथ ही आरंभ होती है। सवाल यह उठाया गया है कि कला–साधना की मध्ययुगीन इस अहम उपलब्धि का श्रेय किसे मिलना चाहिए।

नायक हानूश को, पादरियों को या नगरपालिका की भूमिका वाले सामंती व्यवस्था–चालकों को? ये लोग समय–समय पर हानूश को आर्थिक सहयोग देते थे। श्रेय जो भी लें किंतु घड़ी निर्माता के लिए तो उसकी उपलब्धि ही अभिशाप साबित हुई। बतौर पुरस्कार उसे राजदरबार की प्रतिष्ठित सदस्यता–सुविधाएं, धर्म व शासन के कुचक्रों का अंधापन मिला ताकि वह किसी और के लिए अपूर्ण कलावस्तु निर्मित न कर पाए।

लेखक का यह नाटकीय प्रयास मध्ययुगीन वातावरण और सुदूर चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग से संबंधित होकर भी देशकालीन कलाकार की नियति और इंसानी दशाओं का सफल प्रतीकात्मक आलेख साबित हुआ। कथावस्तु के एक–दो तथ्यों को छोड़कर नाटक में सभी कुछ काल्पनिक है। चेक इतिहास की विविध कथाओं–किंवदंतियों के आधार पर भीष्म साहनी ने मानवीय स्थिति को मध्यकालीन संदर्भ में साकार करने का अर्थपूर्ण यत्न किया है।

देश–काल–परिवेश एवं मध्यकालीन संदर्भ की अभिव्यंजना में यह कृति विशिष्ट रूप से सफल है। इसलिए कि यूरोप की मध्ययुगीन परिस्थितियों की मौलिकता तथा हानूश के मानसिक द्वंद्व व संघर्षशीलता के समन्वय ने न केवल नाटक को मानवीय–संवेदनात्मक आधार पर विश्वास योग्य बनाया है बल्कि कला तथा कलाकार के मध्य धर्म व सत्ता द्वारा खड़े किये जाने वाले अहम प्रश्नों को भी मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य में अपनी समसामयिक संगति सहित उभरकर नाटक को प्रासंगिक युगधर्म के अनुकूल बनाया है।

भीष्म साहनी के नाटकों में हमारे समय व परिवेश के सत्य व संवेदना का समायोजन स्वतः तथा सहजतः हुआ है। लेखक ने समकालीन नाटककारों की तरह मिथक–ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधुनिकता तथा युग–यथार्थ आरोपण का कोई आग्रहशील प्रयास नहीं किया

है। इस नाट्य कला में भीष्म साहनी की वास्तविक शक्ति निहित है और यही उनके नाटकों की सहजता व सरलता भी है।

अपने नाटकों द्वारा इतिहास–महाभारत के दर्पण में वर्तमान को साकार–प्रतिबिंबित करना, वह भी बिना किसी खास प्रयास व आग्रह के– यह रचनाकौशल भीष्म साहनी का वैशिष्ट्य है।

मिथकों के कलात्मक उपयोग की क्षमता निश्चित रूप से हिन्दी नाट्य संसार हेतु सुखद आश्चर्य है। 'हानूश' का परिवेश विदेशी है, बावजूद इसके कलाकार की संघर्षशील चेतना मानवीय संवेदना के धरातल पर देशकाल निरपेक्ष बन सकती है। ऐतिहासिकता से परे होकर भी लेखक चेकोस्लोवाकिया में प्रचलित किंवदंती से प्रभावित हुआ। संघर्ष बोध से युक्त विद्रोही व्यक्तित्व की मजबूत पहचान लेखक ने 'कबिरा खड़ा बजार में' कराई है। माधवी में भी लेखक ने अपनी इस विशेषता का परिचय दिया है, जिसमें नारी–नियति का क्रूर प्रसंग महाभारत से लिया गया है।

• धर्म व सत्ता के कुचक्र और उसके विद्रोह का स्वर

निःसंदेह धर्म और सत्ता के कुचक्र से पिसता रहा है जनमानस और यह कुचक्र व्यवस्था का रूप धारण कर आज भी कलाकार की चेतना को आतंकित किए हुए है। भीष्म साहनी के सभी नाटकों में यह तथ्य साकार हुआ है। हानूश नाटक के नायक के साथ जो होता है, वह कलाकार या जनमानस के साथ होने वाला वर्तमान का भी सत्य है। हानूश का क्षीण–सा विदेशी–इतिहास प्रसंग भारत का भी प्रसंग है। ताजमहल के कला साधकों को भी उनकी अप्रतिम देन के बदले अपने हाथ कटवाकर सत्ता की आतंकी–कठोर–निरीह नियति का शिकार बनना पड़ा था। हानूश नाटक में किंवदंतियों के रूप में प्राप्त मिथक देशकालीन बनकर सर्जक की दुर्दमनीय सृजनात्मकता और सत्ता के समक्ष उसकी निरीहता को ऐसी यथार्थसम्मत दृष्टि से प्रस्तुत करता है कि कलाकार के अंतःसंघर्ष के साथ युगीन वातावरण की विशिष्ट समस्या से हमें संबंधित करता है।

वर्तमान में आर्थिक तनाव व अन्यान्य विविध तनावों के बीच जटिल जीवन जी रहे कलाकार को सत्ता सुख–सुविधाओं के जरिए प्रलोभित कर 'हानूश' की भांति उसकी कला–चेतना और तीव्र सृजन इच्छा को खत्म करने की चेष्टा नहीं हो रही है, ऐसा कोई नहीं कह सकता। ऐसा नहीं है कि यह नाट्य कलागत वैशिष्ट्य अन्य नाटककारों में नहीं मिलता; लेकिन कुछेक किंवदंतियों के जरिए कलाकार के अंतर्द्वंद्व की समाज–सापेक्ष संघर्ष चेतना न केवल भीष्म साहनी की महत्ता को असंदिग्ध रूप से अनूठी बनाती है वरन कला तथा कलाकार के मध्य उभरने वाले कतिपय अहम सवालों को भी मिथक व हकीकत की संगति व प्रासंगिकता प्रदान करती है।

सर्जक की वेदनामय स्थिति यह भी है कि उसके जीवन में आराम की कोई जगह नहीं होती। इस आधारभूत तथ्य के चित्रांकन के कारण ही भीष्म साहनी के विचारों में मार्क्सवादी चिंतन की तरफदारी नजर आती है।

"मैं अपने बेटों से कहता हूं कि मेहनत करना गरीबों से सीखो। गरीब लोग मेहनत करना जानते हैं।... जिंदगी में जितना आराम बढ़ता जाए उतना ही सुख कम होता है,

क्योंकि मेहनत कम हो जाती है।"– यह हानूश नाटक में अधिकारी द्वारा हानूश से कहा गया कथन है। ऐसे प्रसंगों के जरिए भीष्म साहनी को मार्क्स के विचारों की तरफदारी करने वाला कहा जाता है। वस्तुतः भीष्म जी ने अपने नाटकों में सामाजिक, धार्मिक एवं राजकीय यथार्थ को अभिव्यक्त कर इससे पीड़ित आम अवाम की वेदनाओं को आकार दिया है।

परिवेशगत तथ्यता के संदर्भ में भीष्म साहनी के अनुसार 'कबिरा खड़ा बजार में' की परिस्थिति आज की स्थिति से भी जुड़ती है। लेकिन यहां इस बात का कथन अप्रासंगिक न होगा कि नाटककार ने एतदर्थ लेशमात्र भी यत्न नहीं किया है– सब कुछ सहज निरूपित हुआ है। इस नाटक में हमें अपने ही अवचेतन से संबद्ध वर्तमान जीवन की समस्याएं आकार लेती दिखती हैं। दरअसल भीष्म साहनी के मिथकीय चिंतन की विशिष्टता है कि वे अपने व्यतीतोन्मुख नाटकों में वर्तमान होने–बनने–कहने के प्रति किंचित भी आग्रही नहीं हैं। वस्तुतः कबीर की साहित्यिकता सामाजिक जड़ता निवारण का एक माध्यम थी। इसके बल पर उन्होंने विविध मोर्चों पर संघर्ष किया। भीष्म साहनी की अभिव्यंजना से गुजरते हुए हम कबीर के इस संघर्ष को उसकी बहुत–सी तत्कालीन सामाजिकता के बाद भी; समकालीन भारतीय समाज की विविध विसंगतियों–विकृतियों से सहजतः जोड़ पाते हैं।

अपमान व प्रताड़ना की पीड़ा भी कबीर के स्वभाव को नहीं बदल पाती। सिद्धांतों से समझौता न करने का संकेत निरंतर चलता रहता है।

एक बच्चे की पिटाई के लिए उद्धत भीड़ का एक प्रसंग–

पहला नागरिक : यह शोर कैसा है? कहीं सचमुच दंगा तो नहीं हो गया?

कबीर : मार ही डालोगे इसे?

दूसरा नागरिक : अरे, कबिरवा है।

साधू : तुम कौन हो बीच में पड़ने वाले?

कबीर : हम जो हैं सो हैं पर इस मासूम पर चाबुक तो नहीं चलने देंगे।

कबीर स्पष्ट रूप से समाज की तस्वीर को बिना किसी भय, या द्वेषरहित रूप में दूसरे अंक में दिखाई देते हैं। भीष्म साहनी की भाषा में–

कबीर : महन्तों के पास गोला–बारुद है, और मस्जिदवालों के पास तलवारें हैं, हाथी–घोड़े हैं, भाले–नेजे हैं। मेरे पास तो मेरा यह इकतारा है साहिब, मेरे रहते झगड़ा किस बात का?

कायस्थ : बादशाह सलामत के रहते तुम बाजारों में नहीं घूमो, किसी को अपने कवित्त नहीं सुनाओ, बहस–मुबाहिसा नहीं करो, बस, हमने कह दिया।

कबीर : सत्संग तो लगेगा साहिब, सत्संग में तो हम मिलकर भजन करते हैं। और हम अपने कवित्त भी सुनायेंगे और गलियों में भी घूमेंगे।

रूढ़िवादी दृष्टि अंधविश्वासों, धार्मिक आडंबर, सामाजिक परंपराओं और कर्मकांड आदि को लेकर राजनीतिक क्रूर ताकतों, सत्तावादी मानसिकता और दमनकारी प्रवृत्तियों के प्रति जो तीखी प्रतिक्रिया और आक्रामक शक्ति दिखती है, वह प्रेरक स्रोत है कबीर की

सघनता और पौरुष को स्थापित करने का। नाटक की भाषा और रंगभाषा दोनों के मुहावरे को ढालने की क्षमता उनमें है–

कबीर : नहीं, जंग इबादत नहीं है। इन्सान की खिदमत करना, उसे सुखी बनाना इबादत है।

सिकन्दर : हम बिहार पर अपनी फतह का झण्डा गाड़कर लौटे हैं, तो क्या यह छोटी–सी बात है, क्या यह कौम की खिदमत नहीं? दीन की खिदमत नहीं?

कबीर : नहीं, यह खिदमत नहीं है। यह दीन की, खुदा की तौहीन है।

सिकन्दर : तुम पहले इन्सान हो जो हमारे सामने इस तरह बोलने की जुर्रत कर रहे हो। लेकिन हम तुम्हारे साथ नरमी से पेश आयेंगे क्योंकि किसी फकीर–हकीर पर हम हाथ नहीं उठाते।

• मानवीय संवेदना और शिल्प का उदात्त स्वरूप

भीष्म साहनी ने अपने नाटकों में सामाजिक, धार्मिक एवं राजकीय यथार्थ की अभिव्यक्ति के दौरान पीड़ित आम–अवाम की संवेदनाओं को मजबूती से छुआ है जो उनकी नाट्य कला की अनूठी विशिष्टता है। 'कबिरा खड़ा बजार में' की बात करें तो इसकी लोकप्रियता का मूलभूत रहस्य भी यही है। कबीर की अध्यात्म वृत्ति पर केंद्रित साहित्यिक कृत्तियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। बात मंचनीय नाटक की करें तो हिन्दी साहित्य संसार में ये भी कम नहीं। काशी का जुलाहा (महावीर अग्रवाल), काशी का जुलाहा (गोविंद वल्लभ), एकतारे की आंख (मणी मधुकर) आदि कई नाटक उपलब्ध हैं। कबीर को केंद्रित कर लिखे गए नाटकों में सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बजार में' है। वरिष्ठ रंगकर्मी एम.के. रैना के निर्देशन में प्रथमतया मंचित इस नाटक के पदों को पंचानन पाठक सरीखे प्रतिभा संपन्न संगीतकार ने स्वरबद्ध किया था। एक कुशल निर्देशक, सिद्धहस्त संगीतकार के नेतृत्व में राजधानी दिल्ली जैसे महानगर में मंचन छोटी बात नहीं है।

कबीर की मौजूदगी में उनके पालकों (अभिभावकों) के संवाद में संवेदना का एक पुट देखिए–

नूरा : घर में खाने का दाना नहीं, इधर लड़का आवारा हो गया। हमारी जान लेकर रहेगा।

नीमा : कुछ सोचकर बोला करो जी। कैसी कुबात मुंह से निकाली है।

नूरा : न जाने किसको उठा लायी। तब तो बड़ी मोहगर बनी थी अब किये को भुगतो। यह तो सांप पालते रहे। न दीन के रहे, न जहान के।

नूरा : अबकी बार बाहर गया तो मैं उसकी टंगरी तोड़ दूंगा।

नीमा : (कबीर के कहीं से पिटकर चोटिल दशा में आने पर) तू यह क्या करता फिरता है, कबीरा, मेरा दिल दहलता है। जिन लोगों के हाथ में ताकत होती है, उन लोगों के दिल में रहम नहीं होता, बेटा। तू अपनी औकात

देख। तू मेरी बात मान, बेटा, तू सुनकर अनुसनी कर जाया कर, पर मुंह से कुछ न बोला कर।.... क्या बहुत दर्द हो रहा है?

'कबिरा खड़ा बजार में' में नाटककार के संवेदनात्मक शिल्प के कई स्तर हैं, जैसे– युगीन समाज की धर्मांधता के कारण उत्पन्न संवेदना, सत्ता की तानाशाही के कारण उत्पन्न संवेदना, बाह्याचार की विरोध वृत्ति से उत्पन्न संवेदना, आर्थिक दैन्यता से निष्पन्न संवेदना, प्रासंगिकता संदर्भित कबीर की संवेदना आदि।

कबीर के विलक्षण व्यक्तित्व को मुखरित करते हुए भीष्म साहनी ने सहजीवियों की संवेदनाओं को बखूबी साकार किया है। कबीर–सा मुंहफट एवं दो–टूक बात करने वाला दूसरा संत कवि मध्ययुग में नहीं हुआ। हिन्दू–मुस्लिम धर्मांधता के परिणामस्वरूप व्याप्त विरोध वृत्ति से संबंधित अनेक संवेदनाएं नाटक–प्रसंगों में उपलब्ध हैं।

कबीर कट्टरपंथियों के कोपभाजन बने, इसलिए पालक माता नीमा उससे कहती है– "बड़े–बड़े मुल्ला–मौलवी, पंडित–सास्तरी सवाल पूछने के लिए बैठे हैं। बेटा, तू न पढ़ा न लिखा, तू अपना काम देख। तुझे सवालों की क्या पड़ी है?"

लोगों के अंधेपन व जड़ता के विरुद्ध आवाज उठाने पर कबीर पिटते भी थे। उसकी पीठ पर पड़े कोड़ों की मार से छलनी हुई नीमा कहती है– "मैं क्या जानूं, बेटा तूने दोनों से दुश्मनी मोल ले ली है।.... यह तो तीरथ है बेटा, यह तो धरम का गढ़ है। यहां लोग तेरी बात को बुरा मानते हैं। यहां ठांव–ठांव पर मंदिर हैं– मस्जिदें हैं।"

धर्म और राजनीति की संयुक्त स्थापित सत्ता होने पर भी कबीर की विचार–चेतना एवं उदात्त मानवीय भावनाओं–संवेदनाओं का दमन संभव नहीं होता। भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' के अंतिम दृश्य में इसका स्पष्टीकरण किया है। मध्यकालीन सामाजिक चेतना में विद्रोही उद्घोषक बने कबीर की वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी तब थी। व्यवस्थापन में धर्म व सत्ता के खोखलेपन एवं आंतक के खिलाफ कबीर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले रैदास, बशीरा, पीपा पीड़ित–शोषित किंतु प्रतिबद्ध जनशक्ति का संकेत देते हैं।

कबीर के कवित्त गाने वाला अंधा भिखारी धर्म व सत्ता के दुष्चक्रों की मार झेलता एक सामान्य व्यक्ति है। धर्म व सत्ता की दुरभिसंधि सर्वमान्य में आतंक बरपाने की साजिश के तहत उसकी हत्या कर देती है। भीष्म साहनी ने महंत–मौलवी को संकीर्ण धर्मोन्माद एवं सांप्रदायिक शक्तियों का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। कोतवाल के चरित्र में वर्तमान नौकरशाही के संकेत–सूत्र हैं। इस प्रकार संपूर्ण नाटक मध्यकाल का प्रवक्ता होकर भी वर्तमान काल यानी सामयिक संदर्भों की अभिव्यंजना से गुंजायमान है। समूचे नाटक में जाति, वर्ग व धर्म में बंटे समाज के अंतर्विरोध, सांप्रदायिक संघर्ष, धर्माडंबर, बाह्याचार, निम्नवर्ग के शोषण और इनके बीच कबीर का प्रगतिशील चिंतन; जो भी प्रत्यक्ष है सभी में कालजयी स्वर मुखर है। यही कारण है कि 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक पात्र–परिवेश–प्रसंग के लिहाज से प्राचीन होकर भी अत्यंत समसामयिक चेतना–संवेदना से युक्त है।

संवेदना–शिल्प का यही स्तर भीष्म साहनी के नाटक 'हानूश' और 'माधवी' में भी विद्यमान है। कलाकार हानूश का उत्पीड़न और माधवी की त्रासदपूर्ण स्थिति आज भी सच

है। स्त्रीत्व व मातृत्व के हनन की सच्चाई आज का भी सच है, जिस पर वर्तमान साहित्यकार भी मुखर हैं।

• मानव–प्रेम आधारित समतामूलक समाज–निर्माण की पक्षधरता

हिन्दी का अधिकांश नाटक लेखन शिल्पगत प्रयोगों और आधुनिकता बोध के साथ ही नयेपन विषयक जटिलताओं व बौद्धिक वर्ग से मुक्ति के यत्न को रेखांकित करता है। हिन्दी का नाट्य सर्जक वर्तमान की जीवंत–ज्वलंत समस्याओं व सवालों को; विसंगतियों व अंतर्विरोधों को समग्र मानवीय सरोकार सहित आम इन्सान तक पहुंचाना चाहता है।

मानवीय सरोकार सम्मत विशिष्टता भीष्म साहनी में यह है कि वे श्रेणी अथवा वर्गमुक्त ऐसे समतामूलक समाज निर्माण के पक्षधर हैं, जिसका आधार मानवीय प्रेम हो। संवेदना पक्ष की प्रबलता भीष्म साहनी की नाट्य कलागत अहम विशिष्टता है। नाटककार पर मार्क्स के चिंतन का प्रभाव भी इसका एक आधारभूत कारण है। वे तत्कालीन निम्न जातियों की घरेलू आहार–विहार की दयनीय स्थिति का आलेखन तक नाटक के जरिए प्रदर्शित करना नहीं चूके।

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में बिना थके कबीर जब अनबिके थान को लिए घर आता है तब पालक माता नीमा ममता से भरकर उसका स्वागत करती है– "आ, इधर बैठ जा। मैं सत्तू बना लाती हूं तेरे लिए।" कबीर के कवित्त गाने वाले अंधे भिखारी की पीड़ा व्यक्त करते हुए, कबीर के जरिए भीष्म साहनी भिखारियों की गृहस्थी का भी परिचय देते हैं–

"उसकी मां भी अंधी है। उस बेचारी पर क्या बीतेगी! उसकी मां कहती थी, बेटा तेरे कवित्त गाने लगा है, हमारे घर में चूल्हा जलने लगा है।"

'हानूश' नाटक की भीतरी अर्थवत्ता मानवीय समता पर सवाल खड़ा करती है। सामंतशाही की वेदी पर एक कलाकार के निरीह बलिदान की कथा असंख्य मूक बलिदानों की व्यथा–कथा की मुखर प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में निरंकुश–फासीवादी सत्ता के प्रतीक दिल्ली सल्तनत के मुखिया सिकन्दर लोदी से कबीर के निम्नांकित संवाद दर्शनीय हैं–

सिकन्दर : क्यों फकीर, मैं फिर पूछता हूं, तेरा मजहब कौन–सा है?

कबीर : मैंने मजहबों को छोड़ दिया है।

सिकन्दर : मजहबों को छोड़ दिया है, यह कैसे हो सकता है? अभी–अभी तो खुदा की बात कर रहा था।

कबीर : खुदा की बात मजहब नहीं है। रोजा–नमाज मजहब हैं, पूजा–पाठ, व्रत–उपवास मजहब है।

सिकन्दर : तो फिर?

कबीर : जो राजा नमाज न करे, वह तुर्क नहीं है जो व्रत–उपवास न करे, वह हिन्दू नहीं है।

सिकन्दर : ठीक ही तो है।

कबीर : मैं इन्सान को हिन्दू और तुर्क की नजर से नहीं देखता, मैं उसे केवल इन्सान की नजर से, खुदा के बन्दे की नजर से देखता हूं।

सिकन्दर : लेकिन हिन्दू हिन्दू है और मुसलमान मुसलमान। क्या हिन्दू का बेटा हिन्दू नहीं होगा?

कबीर : जन्म से सभी इन्सान होते हैं। वरना ब्राह्मण का बेटा मां के पेट से ही तिलक लगाकर निकलता और तुर्क का बेटा खतनी करवाकर निकलता।

कबीर को जाति, धर्म, संप्रदाय के आधार पर विभक्त एवं भेदभाव ग्रस्त विषम समाज की स्थितियां स्वीकार नहीं, क्योंकि जब–

एके बूंद, एके मलमूतर, एक चाम, एक गूदा
जाति है सब उत्पन्ना को ब्राह्मं को सूदा।'

कबीर ऐसे नये मानव–धर्म का अन्वेषण करना चाहता है जिसमें सभी मत, धर्म और संप्रदाय के लोग परस्पर सद्भाव, समानता और प्रेम से, सहज अस्तित्व की भावना से रह सकें–

कायस्थ : जब तू प्रेम की बात करता है। यदि प्रेम भक्ति ही तेरा उपदेश है, तो जहां जो बैठा है, उसे बैठा रहने दे। पहले कोई अपना धर्म छोड़े, तभी वह सच्ची भक्ति कर सकता है, इसमें तो मुझे कोई तुक नजर नहीं आता।

कबीर : आपको नजर आयेगा भी नहीं, हुजूर।

कायस्थ : तुर्क तुर्क रहे, ब्राह्मण ब्राह्मण रहे, और जुलाहा जुलाहा। और तीनों भगवान की भक्ति करें, यह बिल्कुल मुमकिन है!

कबीर : तीनों भगवान के सच्चे भक्त, और तीनों एक–दूसरे के दुश्मन। तीनों एक जगह बैठकर भगवान की भक्ति नहीं कर सकते?

कायस्थ : वे बेशक अलग करें। ब्राह्मण साकार की पूजा मंदिर में करें, तुर्क मक्का और नमाज करें, निर्गुणियां निर्गुण की उपासना करें, प्रेम–मार्ग तो तीनों अपना सकते हैं।

कबीर : (हंसकर)

: ब्राह्मण कबीर की छाया से दूर भागे, मुल्ला ब्राह्मण को काफिर कहे, पर तीनों भक्त, तीनों भगवान के प्रेमी! वाह!

कायस्थ : कैसी बहकी–बहकी बातें करते हो कबीरदास, जो भगवान से प्रेम करेगा, वह इन्सान से भी प्रेम करेगा!

कबीर : ब्राह्मण ब्राह्मण को ही इन्सान समझेगा, और तुर्क तुर्क को ही इन्सान समझेगा और दोनों मुझे नीच समझेंगे।

कायस्थ : नहीं, नहीं, तुम भूल करते हो।

कबीर : मैं उन्हें गले लगाना चाहता हूं, क्या वे मुझे गले लगायेंगे?

कायस्थ : (ठिठककर) इसकी क्या जरूरत है। जरूरत इस बात की है कि भगवान उन्हें गले लगायें और भगवान तुम्हें भी गले लगायें।

कबीर : उनका भगवान मुझे गले नहीं लगायेगा साहिब, वह भी उन्हीं को गले लगायेगा। फिर एक बराबर कैसे हुए?

कायस्थ : क्या एक साथ मिलकर बैठना जरूरी है?

कबीर : सुनिये साहिब, मैं हूं तो नीच जात का अनपढ़ जुलाहा, पर एक बात तो मैं भी समझता हूं। जब तक किसी की नजर में एक ब्राह्मण है और दूसरा तुर्क, तब तक वह इन्सान को इन्सान नहीं समझेगा। मैं इन्सान को इन्सान के नाते गले लगाने के लिए, मन्दिर के सारे पूजा–पाठ और विधि–अनुष्ठान छोड़ता हूं और मस्जिद के रोजा–नमाज भी छोड़ता हूं। मैं इन्सान को इन्सान के रूप में देखना चाहता हूं।

'माधवी' नाटक में उठाया गया आधारभूत सवाल भी मानव प्रेमाधारित समतामूलक समाज की स्थापना की आवश्यकता पर बल देता है। भीष्म साहनी के इस नाटक में पुरुष प्रधान समाज की सामंतीय मनोवृत्ति में छटपटाती कर्तव्यपरायण निरीह नारी का महाभारतकालीन दस्तावेज है, जो अपनी गहनतम संवेदना में आज भी बेहद प्रासंगिक है।

हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा कहानी है। यद्यपि कहानी अपने आधुनिक रूप में पश्चिम की देन है किंतु कथा–कहानी की परंपरा प्रत्येक देश में बड़ी पुरानी है। मनोरंजन एवं उपदेश इन दो तत्वों को केंद्रित करके कहानी आदिम काल से ही कही सुनी जाती रही है। इसका संबंध अंग्रेजी की छोटी कहानी से बताया गया है। हिन्दी कहानी के उद्‌गम के स्रोत–'वेदों,' 'पुराणों', 'रामायण', 'महाभारत', 'जैन गाथाओं, 'जातक कथाओं', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र–कथाओं', 'वेताल–पंचविंशति', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका', 'शुक–सप्तति', 'बृहत–कथा',

'कथा सरित सागर' में मिलते हैं। वस्तुतः हिन्दी कहानी के निर्माण में एक ओर भारतीय आख्यायिकाओं की परंपरा सहायक एवं प्रेरणा–स्रोत के रूप में कार्य करती है, दूसरी ओर पाश्चात्य रूप–विधान का उस पर पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। हिन्दी कहानियों का प्रारंभ अंग्रेजी और बांग्ला के प्रभाव एवं माध्यम से हुआ है। वाशिंगटन इरविंग, अलेक्जेंडर पुश्किन, एडगर एलेन पो, किपलिंग, गाल्सवर्दी, एच.जी.वेल्स, अरनाल्ड बेनेट, मोपासां, चेखव आदि पाश्चात्य कहानीकारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव हिन्दी कहानी के विकास में सहायक हुआ है।

इस इकाई में हिन्दी की कुछ सर्वश्रेष्ठ कहानियों जैसे– जयशंकर प्रसाद कृत 'पुरस्कार', प्रेमचंद की 'पूस की रात', यशपाल द्वारा रचित 'परदा' और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' के मूल पाठ के सहित समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- जयशंकर प्रसाद की कालजयी रचना 'पुरस्कार' का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- यथार्थवादी लेखक प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी 'पूस की रात' पर मनोवैज्ञानिक रूप से विचार कर पाएंगे;
- मध्यमवर्गीय परिवार के सत्य को दर्शाती यशपाल कृत मार्मिक कहानी 'परदा' की मूल संवेदना की समीक्षा कर पाएंगे;
- उषा प्रियंवदा द्वारा रचित कहानी 'वापसी' के विभिन्न पहलुओं को समझ पाएंगे।

4.2 पुरस्कार : जयशंकर प्रसाद

छायावाद के आधार स्तंभों में से एक जयशंकर प्रसाद अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध साहित्यकार हैं। इनकी प्रतिनिधि काव्यकृति 'कामायनी' वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय है। जयशंकर प्रसाद ने साहित्य से जुड़ी प्रत्येक विधा में अपनी लेखनी का प्रयोग किया है। काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक तथा निबंध सभी विधाओं में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। हिन्दी साहित्य के फलक पर अपनी लेखनी से जयशंकर प्रसाद ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। कहते हैं प्रसाद जी जब नौ साल के थे तब अपने गुरु रसमयसिद्ध जी को कविता लिख कर दिखाई थी। साहित्य में उन्होंने ब्रजभाषा से पदार्पण किया था। शुरुआत में प्रसाद जी ने 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में कविताएं लिखीं। बाद में वे खड़ी बोली में कविता लिखने लगे।

4.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जयशंकर प्रसाद का जन्म गोवर्धन सराय मुहल्ले के समृद्ध वैश्य परिवार में 30 जनवरी सन् 1889 ई. में वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनके पितामह बाबू शिवरत्न साहू दान देने

में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद कलाकारों का आदर करने के लिए विख्यात थे। अपने सुरती के व्यवसाय में नाम–ख्यात होने से शिवरत्न साहू 'सूंघनी साहू' नाम से बनारस में प्रसिद्ध हो गए। बनारस की जनता 'हर हर महादेव' के घोष से इस वंश के लोगों का सम्मान करती थी। यह सम्मान बनारस के महाराज के अतिरिक्त केवल इसी वंश को प्राप्त हुआ।

प्रसाद जी की आरंभिक शिक्षा काशी में हुई, किंतु बाद में घर पर ही इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू तथा फारसी का अध्ययन घर पर ही किया। प्रसाद बड़े ही प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के इनसान थे। उन्हें प्रारंभ से ही ज्ञान के प्रति अभिप्सा तथा विद्या का व्यसन था। प्रसाद जी को अमरकोश, पाणिनी के सूत्र तथा गीता कंठस्थ थी।

जयशंकर प्रसाद जी का बचपन काफी सुख से गुजरा था, परंतु बाद में उन्हें अत्यंत दुख भी झेलना पड़ा। बारह वर्ष की उम्र में पिता, पंद्रह वर्ष की उम्र में माता तथा सत्रह वर्ष की उम्र में अपने भाई शुभरतन को इन्होंने खो दिया था। पिता के निधन के बाद से परिवार में जो खींचतान, गृह–कलह और मुकदमेबाजी शुरू हुई उसकी वजह से व्यवसाय लगातार खत्म होता चला गया। परिवार की एकसूत्रता भी खत्म होती चली गयी। फिर भाई शुभरतन ने अपने हौसले, साहस और परिश्रम से व्यवसाय को कुछ व्यवस्थित किया ही था कि वे भी संसार छोड़ कर चले गए। तब व्यवसाय और गृहस्थी का बोझ प्रसाद जी के कंधों पर आ पड़ा।

प्रसाद जी का वैवाहिक जीवन भी कभी सुखद नहीं रह पाया। अपना प्रथम विवाह 1908 ई. में उन्होंने स्वयं किया था। विवाह के उपरांत बीमारी के कारण पहली पत्नी जल्द ही दुनिया.से चली गयी। दूसरा विवाह 1916 ई. में किया इस बार भी बीमारी की वजह से पत्नी असमय दुनिया से चली गयी। अब इसके बाद प्रसाद जी घर नहीं बसाना चाहते थे परंतु भाभी के दुख का ख्याल कर 1918 ई. में उन्होंने तीसरा विवाह किया, जिनसे उनके एकमात्र पुत्र शंकर (1922 ई.) का जन्म हुआ।

प्रसाद जी स्वभाव से शांत, विनम्र, स्वाभिमानी, गंभीर, मृदुभाषी, मिलनसार और सहनशील थे। वे कटु से कटु आलोचना का भी उत्तर नहीं देते थे। वे विनोद–प्रिय व्यक्ति थे। उनकी छोटी–सी मित्र मंडली थी जिससे वे खुश रहते थे। प्रसाद जी शिव के उपासक थे। अपने जीवन के 48वें वर्ष के पड़ाव में ही रोग ग्रस्त होने के कारण 15 नवंबर, 1937 ई. को उनका देहावसान हो गया।

कृतित्व

काव्य

प्रसाद जी की काव्य–कृतियों का रचना–क्रम इस प्रकार है– 1. उर्वशी (1909 ई.), 2. वनमिलन (1909 ई.), 3. प्रेमराज्य (1909 ई.), 4. अयोध्या का उद्धार (1910 ई.), 5. शोकोच्छवास (1910 ई.), 6. वभ्रवाहन (1911 ई.), 7. कानन कुसुम (1913 ई.), 8. प्रेमपथिक (1913 ई.), 9. करुणालय (1913 ई.), 10. महाराणा का महत्व (1914 ई.), 11. झरना (1918 ई.), 12. आंसू (1925 ई.), 13. लहर (1933 ई.), 14. कामायनी (1935 ई.)

उपन्यास

प्रसाद जी ने निम्नलिखित उपन्यास लिखे हैं– 1. कंकाल (1929 ई.), 2. तितली (1934 ई.), 3. इरावती (अधूरा)।

कहानी संग्रह

1. छाया (1912 ई.), 2. प्रतिध्वनि (1926 ई.), 3. आकाशदीप (1929 ई.), 4. आंधी (1931 ई.), 5. इंद्रजाल (1936 ई.)।

नाटक

प्रसाद जी ने ऐतिहासिक नाटककार के रूप में ख्याति अर्जित की है। प्रमुख नाट्य कृतियां इस प्रकार हैं–

1. सज्जन (1910 ई.), 2. कल्याणी परिणय (1912 ई.), 3. प्रायश्चित (1912 ई.), 4. राज्यश्री (1918 ई.), 5. विशाखा (1921 ई.), 6. आजातशत्रु (1922 ई.), 7. जनमेजय का नागयज्ञ (1926 ई.), 8. स्कन्दगुप्त (1928 ई.), 9. एक घूंट (1930 ई.), 10. चंद्रगुप्त (1931 ई.), 11. ध्रुवस्वामिनी (1933 ई.)।

निबंध

जयशंकर प्रसाद के निबंधों का संग्रह का नाम है 'काव्य कला तथा अन्य निबंध'। इसमें आठ साहित्यिक निबंध संकलित हैं।

4.2.2 पुरस्कार : मूलपाठ

आर्द्रा नक्षत्र; आकाश के काले–काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव–दुंदुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण–पुरुष झांकने लगा था। देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर–तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुंड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोर भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम–किरणों से अनुरंजित नन्हीं–नन्हीं बूंदों का एक झोंका स्वर्ण–मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल सूचना से जनता ने हर्ष–ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुंदरियों के दो दल, आम्रपल्लवों से सुशोभित मंगल–कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित–वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण–रंजित हल की मूठ पकड़कर महाराज ने जुते हुए सुंदर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता। उस दिन इन्द्र–पूजन की धूमधाम होती; गोठ होती। नगर–निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनंद मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता; दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिए कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते, तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था; इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका को ही मिला। वह कुमारी थी। सुंदरी थी। कोशेयवसन उसके शरीर पर इधर–उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी, वे सब बरौनियों में गूंथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मंद मुस्कराहट के साथ सिहर उठते; किंतु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता नहीं की। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे। विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौंदर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण मुद्राएं। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली; किंतु साथ ही उसमें की स्वर्णमुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे! महाराज की भृकुटी भी जरा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा– देव! यह मेरे पितृ–पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है; इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मंत्री ने तीखे स्वर से कहा– अबोध! क्या बक रही है? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का तो यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना।

राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है, मंत्रिवर!....महाराज को भूमि–समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है; किंतु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है। –मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करने पर मंत्री ने कहा– देव! वाराणसी–युद्ध के अन्यतम वीर–सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।– महाराज चौंक उठे– सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है?

हां, देव!– सविनय मंत्री ने कहा।

इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मंत्रिवर?– महाराज ने पूछा।

देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर नियमानुसार पुरस्कार–स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यंत अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भू–सम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष–भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।

महाराज को विचार–संघर्ष से विश्राम की अत्यंत आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसरजित हुई। सब अपने–अपने शिविरों में चले गए। किंतु मधूलिका

को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक–वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ– अपने विश्राम–भवन में जागरण कर रहा था। आंखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाबी खिल रही थी, वह रंग उसकी आंखों में था। सामने देखा तो मुण्डेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अंगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते–देखते नगर–तोरण पर जा पहुंचा। रक्षक–गण ऊंघ रहे थे, अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक–कुमार तीर–सा निकल गया। सिंधुदेश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता–घूमता अरुण उसी मधूक–वृक्ष के नीचे पहुंचा, जहां मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न–निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवीलता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित, भ्रमर निस्पंद थे। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए, परंतु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया–छिः, कुमारी के सोए हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन? मधूलिका की आंखें खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। भद्रे! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो?

उत्सव! हां, उत्सव ही तो था।

कल उस सम्मान....

क्यों आपको कल का स्वप्न सता रहा है? भद्र! आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट न रहने देंगे?

मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है, देवि!

मेरे उस अभिनय का–मेरी विडम्बना का। आह! मनुष्य कितना निर्दयी है, अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।

सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूं– मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी....।

राजकुमार! मैं कृषक–बालिका हूं। आप नन्दबिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया। मैं दुःख से विकल हूं; मेरा उपहास न करो।

मैं कोशल–नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूंगा।

नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती– चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।

तब तुम्हारा रहस्य क्या है?

यह रहस्य मानव–हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव–हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न–खिचकर एक कृषक–बालिका का अपमान करने न आता। मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्नकिरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई? उसके हृदय में टीस–सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

मधूलिका ने राजा का प्रतिपादन, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी–सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक–वृक्ष के नीचे छोटी–सी पर्णकुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता, वही उसकी सांसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था।

दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कांति थी। आसपास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़–धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था! ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाए रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं; परंतु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती–घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई। दो, नहीं–नहीं, तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे प्रभात में– तरुण राजकुमार ने क्या कहा था।

वह अपने हृदय से पूछने लगी– उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक–सी वह पूछने लगी– क्या कहा था? दुःख–दग्ध हृदय उन स्वप्न–सी बातों को स्मरण कर सकता था? और स्मरण ही होता, तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री विडम्बना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दारिद्र्य की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रसाद–माला के वैभव का काल्पनिक चित्र–उन सूखे डंठलों के रंध्रों से, नभ में– बिजली के आलोक में– नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की संध्या में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका मन–ही–मन कह रही थी। 'अभी वह निकल गया।' वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़–गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए कांप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ–

कौन है यहां? पथिक को आश्रय चाहिए।

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी– राजकुमार!

मधूलिका?– आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई– इतने दिनों बाद आज फिर!

अरुण ने कहा– कितना समझाया मैंने– परंतु....

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा– और आज आपकी यह क्या दशा है?

सिर झुकाकर अरुण ने कहा– मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूं।

मधूलिका उस अंधकार में हंस पड़ी– मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक–बालिका, यह भी एक विडम्बना है, तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूं।

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे में धुली हुई चांदनी, हाड़ कंपा देने वाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट–वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किंतु अरुण जैसे अत्यंत सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा– जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो, तो फिर इतने सैनिकों के साथ रहने की क्या आवश्यकता है।

मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन–मरण के साथी हैं, भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?

क्यों? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम....।

भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूं। नए राज्य की स्थापना कर सकता हूं। निराश क्यों हो जाऊं?– अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था; पर कह न सकता था।

नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे? कोई ढंग बताओ, तो मैं भी कल्पना का आनंद ले लूं।

कल्पना का आनंद नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान से सिंहासन पर बिठाऊंगा! तुम अपने छिने हुए खेत की चिंता करके भयभीत न हो।

एक क्षण में सरल मधूलिका के मन में प्रमाद का अंधड़ बहने लगा– द्वंद्व मच गया। उसने सहसा कहा– आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी राजकुमार।

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला– तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो?

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हां भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरंत बोल उठा– तुम्हारी इच्छा हो, तो प्राणों से पण लगा कर मैं तुम्हें इस कोशल–सिंहासन पर बिठा दूं। मधूलिके! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी? मधूलिका एक बार कांप उठी। वह कहना चाहती थी....नहीं; किंतु उसके मुंह से निकला– क्या?

सत्य मधूलिका, कोशल–नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिंतित हैं। यह मैं जानता हूं, तुम्हारी साधारण–सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गए हैं।

मधूलिका की आंखों के आगे बिजलियां हंसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा– तुम बोलती नहीं हो?

जो कहोगे, वह करूंगी....मंत्रमुग्ध–सी मधूलिका ने कहा।

स्वर्णमंच पर कोशल–नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आंखें मुकुलित किए हैं। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आंदोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे–धीरे संचालित हो रहे हैं। ताम्बूलवाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा– जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।

आंख खोलते हुए महाराज ने कहा– स्त्री! प्रार्थना करने आई है? आने दो।

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा– तुम्हें कहीं देखा है?

तीन बरस हुए देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।

ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताए, आज उसका मूल्य मांगने आई हो, क्यों? अच्छा–अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!

नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।

मूर्ख! फिर क्या चाहिए?

उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूंगी। मुझे सहायक मिल गया। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा, भूमि को समतल भी बनाना होगा।

महाराज ने कहा– कृषक–बालिके! वह बड़ी ऊबड़–खाबड़ भूमि है। जिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्व रखती है।

तो फिर निराश लौट जाऊं?

–सिंहमित्र की कन्या! मैं क्या करूं, तुम्हारी यह प्रार्थना....

देव! जैसी आज्ञा हो!

जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूं।

जय हो देव!– कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमंदिर के बाहर आई।

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जंगल है, आज मनुष्यों के पद–संचार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे वे मनुष्य स्वतंत्रता से इधर–उधर घूमते थे। झाड़ियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहां मधूलिका का अच्छा खेत बन रहा था। तब इधर की किसको चिंता होती?

एक घने कुंज में अरुण और मधूलिका एक–दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उसी निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आंखें चमक उठीं। सूर्य की अंतिम किरण झुरमुट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगी। अरुण ने कहा– चार प्रहर और, विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण–कलेवर कोशल–राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा और मगध से निर्वासित मैं एक स्वतंत्र राष्ट्र का अधिपति बनूंगा, मधूलिके!

भयानक! अरुण, तुम्हारा साहस देख मैं चकित हो रही हूं। केवल सौ सैनिकों से तुम...

रात के तीसरे प्रहर मेरी विजय–यात्रा होगी।

तो तुमको इस विजय पर विश्वास है?

अवश्य, तुम अपनी झोंपड़ी में यह रात बिताओ; प्रभात से तो राज–मंदिर ही तुम्हारा लीला–निकेतन बनेगा।

मधूलिका प्रसन्न थी; किंतु अरुण के लिए उसकी कल्याण–कामना सशंक थी। वह कभी–कभी उद्विग्न–सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा– अच्छा, अंधकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राण–पण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्द्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए; तब रात्रि–भर के लिए विदा! मधूलिके!

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कंटीली झाड़ियों से उलझती हुई क्रम से, बढ़ने वाले अंधकार में वह झोपड़ी की ओर चली।

पथ अंधकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़–तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख–कल्पना थी, वह जैसे अंधकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी– वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध का चिरशत्रु! ओह, उसकी विजय! कोशल–नरेश ने क्या कहा था– 'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र, कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं, 'नहीं, मधूलिका! मधूलिका!!' जैसे उसके पिता उस अंधकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोपड़ी तक न पहुंची। वह उधेड़–बुन में विक्षिप्त–सी चली जा रही थी। उसकी आंखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अंधकार में चित्रित होती जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे–आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बाएं हाथ में अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यंत वीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परंतु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया; पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोककर कहा– कौन? कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़ककर कहा– तू कौन है, स्त्री? कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।

रमणी जैसे विकार–ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी– बांध लो, मुझे बांध लो। मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।

सेनापति हंस पड़े, बोले– पगली है।

पगली नहीं, यदि वही होती, तो इतनी विचार–वेदना क्यों होती? सेनापति! मुझे बांध लो। राजा के पास ले चलो।

क्या है, स्पष्ट कह!

श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जाएगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा– तू क्या कह रही है?

मैं सच कह रही हूं; शीघ्रता करो।

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे–धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बांध दी गई।

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केंद्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रांतों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गांवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण–गाथाएं लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। जब थोड़े–से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग–द्वार पर रुके, तब दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे। उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे। उन्होंने कहा– अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे।

सेनापति की जय हो! दो सौ।

उन्हें शीघ्र ही एकत्र करो; परंतु बिना किसी शब्द के। सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हों।

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमंदिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख–निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे; किंतु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने उन्हें कहा– जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा– सिंहमित्र की कन्या! फिर यहां क्यों? क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है। कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी संबंध में तुम कहना चाहते हो?

देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबंध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह संदेश दिया है।

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह कांप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा– मधूलिका, यह सत्य है!

हां, देव!

राजा ने सेनापति से कहा– सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो। मैं अभी आता हूं! सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा– सिंहमित्र की कन्या! तुमने एक बार फिर कोशल

पर उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबंध कर लूं।

अपने साहसिक अभियान में अरुण बंदी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक से अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग और दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल–वृद्ध–नारी आनंद से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा–मण्डप दर्शकों से भर गया। बंदी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार करते हुए कहा– 'वध करो!' राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी– 'प्राण–दण्ड!' मधूलिका बुलाई गई। वह पगली–सी आकर खड़ी हो गई। कोशल–नरेश ने पूछा– मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, मांग। वह चुप रही।

राजा ने कहा– मेरी निज की जितनी खेती है, मैं सब तुम्हें देता हूं। मधूलिका ने एक बार बंदी अरुण की ओर देखा। उसने कहा– मुझे कुछ न चाहिए। अरुण हंस पड़ा। राजा ने कहा– नहीं, मैं तुझे अवश्य दूंगा। मांग ले।

तो मुझे भी प्राणदंड मिले। कहती हुई वह बंदी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

4.2.3 कथासार

'पुरस्कार' कहानी 'कृषि महोत्सव' से शुरू होती है। इसके लिए मधूलिका के खेत का चयन किया जाता है। इस महोत्सव में मधूलिका सहर्ष भाग लेकर अपने कर्तव्य का निर्वाह भी करती हैं। किंतु चार गुने दाम देकर भी उसे अपने खेत को महाराज को देना स्वीकार नहीं है। इसके लिए वह दुर्ग के पास की बंजर भूमि अपने खेत के बदले में मांगती है। महाराज स्वीकार कर लेते हैं। मधूलिका वहीं रहने लगती है। वहीं उसकी मुलाकात मगध के विद्रोही राजकुमार अरुण से होती है। दोनों में आपसी आकर्षण पैदा हो जाता है। राजकुमार मधूलिका को सुनहरे सपने दिखाता है, कहता है– "कल्पना का आनंद नहीं मधूलिका मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान से सिंहासन पर बिठाऊंगा। तुम अपने छिने हुए खेत की चिंता करके भयभीत न हो।"

किंतु, जब विद्रोही राजकुमार अरुण श्रावस्ती दुर्ग पर हमला करने की साजिश में मधूलिका को शामिल करना चाहता है। तब मधूलिका बहुत सोचती है। अंततः यह सोच उसे अपने देश प्रेम की ओर ले जाती है। और वह नाटकीय ढंग से राजकुमार को बंदी बनवा देती है। महाराज इस कृत्य से प्रसन्न होते हैं। उसे पुरस्कृत करने का मन बनाते हैं और मधूलिका से कहते हैं– "मेरे निज की जितनी खेती है मैं सब तुम्हें देता हूं" इस पर मधूलिका ने कहा– "मुझे कुछ नहीं चाहिए।" यह कहने से पहले मधूलिका ने बंदी अरुण को निहारा। किंतु यह सुनकर अरुण हंस पड़ा। राजा बोला– "नहीं, मैं तुझे अवश्य दूंगा। मांग ले" यह सुना तो मधूलिका बोली– "तो मुझे भी प्राण दंड मिले" और यह कहती हुई वह बंदी अरुण के पास जा खड़ी हुई। पूरी कहानी में संवेदना छायी हुई है। संवेदनशीलता की दृष्टि से महाराज और मधूलिका के चरित्र उत्तम बन पाए हैं।

कहानी की मूल संवेदना में देशप्रेम सर्वोपरि स्थान पर रहा है। साथ ही भूमि प्रेम भी मधूलिका के मन में हिलोरें लेता प्रतीत होता है।

4.2.4 मुख्य अवतरणों की व्याख्या

- कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता। उस दिन इन्द्र–पूजन की धूमधाम होती; गोठ होती। नगर–निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनंद मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता; दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

संदर्भ– यह गद्यांश जयशंकर प्रसाद की कहानी 'पुरस्कार' से लिया गया है।

प्रसंग– कोशल के प्रसिद्ध उत्सव 'कृषि महोत्सव' के अवसर का यह प्रसंग है।

व्याख्या– कोशल में प्रत्येक वर्ष बड़ी धूमधाम से 'कृषि महोत्सव' मनाया जाता था। इस वर्ष भी बड़ी धूमधाम और हर्षोल्लास से यह उत्सव मनाया जा रहा है। इस अवसर पर महाराज को कृषक बनकर निर्धारित खेत में बीज डालने (बोने) होते हैं। इस अवसर पर इन्द्र का पूजन भी किया जाता है। नगर के बाल, वृद्ध नर–नारी पहाड़ी भूमि पर खूब आनंद मनाते हैं। इस अवसर पर आस–पास के राजकुमार भी आकर इस महोत्सव में प्रसन्नचित्त हो भाग लेकर आनंद का अनुभव करते हैं।

- महाराज के संकेत करने पर मंत्री ने कहा– देव! वाराणसी–युद्ध के अन्यतम वीर–सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।– महाराज चौंक उठे– सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है?

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– इस बार जिसका खेत कृषि महोत्सव के लिए चुना गया है, उसका परिचय राजा के पूछने पर मंत्री बता रहे हैं–

व्याख्या– मंत्री महाराज के संकेत करने पर बतलाते हैं कि हे देव! वाराणसी युद्ध के शूरवीर सिंहमित्र की यह कन्या मधूलिका का खेत है। यह कन्या वही है। यह सुना तो महाराज आश्चर्य में पड़ गए, बोले– यह सिंहमित्र की कन्या है। उस शूरवीर ने तो मगध के समक्ष कोशल की लाज बचायी थी। यह उस शूरवीर की पुत्री है और ये खेत सिंहमित्र का है। इसकी स्वामिनी उसकी पुत्री ये मधूलिका है।

- शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़–धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था! ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाए रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं; परंतु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती–घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई। दो, नहीं–नहीं, तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे प्रभात में– तरुण राजकुमार ने क्या कहा था।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– दुर्ग के दक्षिण भाग की बंजर भूमि पर मधूलिका ने बसेरा किया हुआ है। उसका उद्देश्य वहां रहकर उस दी गई भूमि पर खेती योग्य भूमि तैयार करने का है। इसीलिए वह वहीं रहकर शीतकाल में निवास करती है।

व्याख्या– इसी बंजर भूमि पर मधूलिका को विद्रोही राजकुमार अरुण मिला था। उसे सामग्री बनाने का आश्वासन देकर और आने का वचन देकर चला गया था। इस बात को सालोंसाल गुजर गए। ऐसे में मधूलिका की झोपड़ी की छत शीतकाल की बारिश से टपकनी शुरू हो गई थी। अपने बचाव में वह सिमटी–सुकड़ी ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका आज अपने अभावग्रस्त जीवन पर विचार कर रही थी। कुछ अधिक ही सोच रही थी। जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए जो साधन जुटाये जाते हैं– उनकी अपनी सीमा होती है। ये सीमा आवश्यकता और कल्पना पर निर्भर करती है। ऐसे ही क्षणों में उसे बीती बात और कल्पना यकायक स्मरण हो आयी। वह सोचने लगी– दो तीन वर्ष पहले इसी मधूक के तले सवेरे–सवेरे विद्रोही राजकुमार अरुण ने उसे क्या कहा था। यही सोचते–सोचते वह अपने में खो सी जाती है।

- सत्य मधूलिका, कोशल–नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिंतित हैं। यह मैं जानता हूं तुम्हारी साधारण–सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गए हैं।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– राजकुमार अरुण अपनी शूरता की शेखी बघारते हुए मधूलिका से कहता है।

व्याख्या– अरुण कहता है, ये बात सच है कि कोशल–नरेश तभी से तुम्हारी फिक्र में हैं जबसे उनको तुम्हारे बारे में पता चला है। ऐसे में, तुम्हारी कोई भी बात मानने से मना नहीं कर पाएंगे। मुझे यह भी ज्ञात है मधूलिका कि इस समय कोशल प्रदेश के अधिकांश सैनिक पहाड़ी दस्युओं से टक्कर लेने और अपने क्षेत्र से उन्हें भगाने के लिए बहुत दूर गए हुए हैं। ये सुनकर मधूलिका विचार मग्न हो गई!

- उषा के आलोक में सभा–मण्डप दर्शकों से भर गया। बंदी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार करते हुए कहा– 'वध करो!' राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी– 'प्राण–दण्ड!' मधूलिका बुलाई गई। वह पगली–सी आकर खड़ी हो गई। कोशल–नरेश ने पूछा– मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, मांग। वह चुप रही।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– विद्रोही राजकुमार अरुण को बंदी बना लिया गया। उसको सजा सुनाने के लिए दर्शकों से भरे मण्डप में लाया गया। उसके बाद क्या हुआ उसी का वर्णन इन पंक्तियों में है–

व्याख्या– दिन के उजाले में कोशल का सभा–मण्डप दर्शकों से खचाखच भरा था। जैसे ही राजकुमार दस्यु अरुण को मण्डप में एक नियत स्थान पर लाया गया। दर्शक समूह जोश से उबल पड़ा, वे एकजुट होकर मांग करने लगे– 'वध करो'। राजा भी उनके इस निर्णय

से सहमत होते हुए बोले और प्राणदण्ड की आज्ञा सुना दी। तत्पश्चात् मधूलिका को भी वहां बुलाया गया। वह पगलायी–सी वहां आ गई। उसे देखकर नरेश ने पूछा– मधूलिका तुमने इस विद्रोही राजकुमार को पकड़वाया। कोशल प्रदेश की रक्षा की। अतः तुम पुरस्कार की अधिकारिणी हो। बताओ, तुम्हें क्या पुरस्कार चाहिए। मांगो, ये सुनकर मधुलिका खामोश रही। सभी उपस्थित जन और स्वयं राजा भी उसकी मांग की प्रतीक्षा करने लगे।

4.2.5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'पुरस्कार' की समीक्षा

कहानी कला की दृष्टि से 'पुरस्कार' विशेषरूपेण ध्यान आकर्षित करने वाली कहानी है। प्रसाद जी की श्रेष्ठ कहानियों का प्राणतत्त्व–अंतर्द्वंद्व और नाटकीयता लिए यह कहानी भावनात्मकता स्तर तक ले जाती है। हिन्दी कथाकारों में अनुभव वैविध्य की दृष्टि से प्रसाद जी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भारत के प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास के प्रति तो प्रसाद जी का लगाव जाना–पहचाना ही है। किंतु काल और इतिहास के परे सामान्यजन भी उन्हें कथा–रचना के लिए चरित्र बन आकर्षित करते रहे।

कथानक– इसका कथानक भी ऐतिहासिक घटना पर ही आधारित है। किंतु इस कहानी 'पुरस्कार' का कथानक नाटकीयता लिए हुए प्रतीत होता है।

चरित्र चित्रण– चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'पुरस्कार' कहानी बोलती कहानी कही जा सकती है।

कृषक बालिका मधूलिका का मन यहां खूब खुला है। वह कुछ न कहते हुए भी जैसे कृषि महोत्सव की परम्परा पर ही प्रश्न–चिह्न लगा देती है। राजकुमार से उसका यह कहना कि 'आज मेरी स्नेह–भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुख से विकल हूं...' उसकी मनःस्थिति को उजागर करता है। किंतु उसके बाद शुरू होता है प्रेम और कर्तव्य के बीच अंतर्द्वंद्व का ऐसा सिलसिला जो मधूलिका के चरित्र को ऊंचाइयों के उत्तुंग शिखर पर स्थापित कर देता है। अपने पात्रों के चरित्रों में भीतर भी जो कुछ संभव है, प्रसाद उसे बखूबी पकड़ लेते हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से महाराज का चरित्र भी उत्कृष्ट बन पड़ा है।

कथोपकथन– इस कहानी का कथोपकथन देश प्रेम, त्याग, प्रेम और बलिदान की सीमा में बंधा हुआ है। यह बात सिंहमित्र, मधूलिका, राजकुमार और महाराज के चरित्रों के चित्रण से सिद्ध हो जाती है।

देशकाल, वातावरण योजना– इस कहानी का वातावरण अत्यन्त सजीव हो उठा है। घटनाएं चलचित्र की भांति घटती चली जाती हैं, वह भी क्रमबद्ध तरीके से। देशकाल का भी पूरा ध्यान कहानीकार ने अपनी इस कहानी में रखा है। कहानी का शीर्षक भी अत्यन्त सोच–विचार कर रखा गया । आवेग इस कहानी का आधार अवश्य है लेकिन विवेकहीन हो जाना जैसे प्रसाद के प्रमुख पात्रों को कहीं भी स्वीकार नहीं है। इस कहानी के अंत को लेकर बड़ी चर्चाएं हुईं किन्तु इससे इतर अंत कहानी को कहां पहुंचा देगा, यह भी विचार करने योग्य मुद्दा है।

भाषा–शैली– इस कहानी की भाषा–शैली कहानी के कथानक के अनुकूल ही बन पड़ी है। इसके इस एक संवाद से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है–"राजकीय रक्षण की अधिकारी तो सारी प्रजा है।" मधूलिका का यह कथन कहानी का फलक विस्तृत करता है। इस कहानी की भाषा संस्कृतनिष्ट होने के साथ–साथ विशुद्ध हिन्दी का पुट लिए हुए है। शैली पात्रानुसार रही है।

उद्देश्य– कहानी अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल कही जा सकती है। मधूलिका का देश प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम दोनों ही अपने आप में अपनी–अपनी ऊंचाइयां लिए हुए हैं। कहानी का उद्देश्य देश–प्रेम को दर्शाना था, सो, कहानी अपने इस उद्देश्य में सफल रही है।

4.3 पूस की रात : प्रेमचंद

हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद–युग प्रवर्तक कहे जाते हैं। उन्होंने सुप्त जन–चेतना को जगा दिया। इन्होंने हिन्दी–जगत को कुल नौ कहानी–संग्रह दिए हैं। इन कहानियों में जन–जीवन की प्रगति, ग्राम्य जीवन की सुंदर झांकियां हैं। प्रेमचंद को जनजीवन की गहन अनुभूति थी। वे गांवों के सरल जीवन से अत्यंत प्रेरित थे किंतु उसकी दुर्दशा से दुखी भी थे। इसलिए उनके पात्र यथार्थ के अत्यंत समीप हैं। प्रेमचंद एक महान कथाकार थे। आज भी वे नवीन कथाकारों के प्रेरणास्रोत माने जाते हैं।

4.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रेमचंद का जन्म भारत में जब हुआ, भारत अंग्रेजों का गुलाम था। हां, एक बात थी कि सैंकड़ों वर्षों के मुस्लिम शासकों के रूढ़िवादी एवं स्वार्थवादी परम्परा के विरुद्ध अंग्रेजों के भारत में आगमन के साथ नवजागरण का बिगुल बज चुका था। जनमानस के कई शताब्दियों से कुन्द मस्तिष्क में जागृति का स्फुरण प्रारम्भ हो चुका था परन्तु वह मात्र स्फुरण ही था। हिन्दी कथा साहित्य में जीवन का अध्ययन करने वाले प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, सन् 1880 में बनारस जिले लमही नामक ग्राम में एक सामान्य कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिताजी का नाम अजायबराय था। वे निम्न मध्यवर्गीय परिवार के थे और वहीं डाकखाने में एक लिपिक थे। जीविका के लिए थोड़ी–सी खेती भी थी। डाकखाने से उन्हें 20 रुपये पारिश्रमिक के रूप में मिलते थे जो घर का खर्च चलाने के लिए पर्याप्त नहीं थी। घर सदैव आर्थिक तंगी का शिकार ही रहता था। मुंशी प्रेमचंद का मूल का नाम धनपतराय था किन्तु उनके चाचा उन्हें नवाबराय के नाम से पुकारते थे। जब प्रेमचंद पांच वर्ष के थे, तभी से उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया था। पढ़ने में वे कुशाग्र बुद्धि थे। इनकी शिक्षा की शुरुआत ऊर्दू भाषा में हुई। अपनी विपन्नता की स्थिति के सम्बन्ध में प्रेमचंद ने लिखा कि– "मैंने कभी बारह आने से अधिक का जूता नहीं पहना है और कभी चार आने गज से ज्यादा का कपड़ा नहीं पहना।"

प्रेमचंद की माता आनन्दी देवी परम सुशीला और संतोषी स्वभाव की थी लेकिन दुर्भाग्य से जब प्रेमचंद मात्र सात वर्ष के थे, उनका स्वर्गवास हो गया। माता का स्वर्गवास हो जाने पर प्रेमचंद एक तरह से अनाथ ही हो गए। उनके पिता अजायबराय ने कुछ

दिनों बाद अपना दूसरा विवाह कर लिया। प्रेमचंद विमाता को सदैव चाची कहकर पुकारा करते थे। विमाता का व्यवहार प्रेमचंद के प्रति सदैव द्वेषपूर्ण रहा। अतः बचपन से ही वह उस पावन स्नेह की सुखद छाया से वंचित ही रहे जिससे शैशव विकसित होता है। विमाता के उपेक्षित व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि बालक मन पर बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ने लगा। वह घर पर कम रहते और अपने समवयस्क साथियों के साथ खेल–कूद में व्यस्त रहते जिस कारण उन्हें पिता से प्रताड़ित होना पड़ता। विमाता और पिता के उपेक्षित व्यवहार ने उन्हें संवेदनशील बना दिया और वे गांव वालों के बीच रह उनके मनोविज्ञान से वंचित होने लगे जब प्रेमचंद 13 वर्ष के थे, उनके पिता का स्थानांतरण गोरखपुर हो गया और तब उन्हें शहर के हाईस्कूल में भर्ती कर दिया गया। शहर के स्कूल में भर्ती होने पर उनकी रुचि अध्ययन की ओर आकर्षित हुई, किन्तु उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति वैसी ही बनी रही। 15 वर्ष की आयु में ही उनका विवाह हो गया। उनकी पत्नी कुरूप तो थीं ही, वाणी से भी कर्कश थीं जिससे उनकी कभी पटी नहीं। इस शादी (बेमेल) में उनकी विमाता का बहुत हाथ था, विमाता के पिता ने ही यह शादी कराई थी। प्रेमचंद के विवाह के सालभर बाद ही उनके पिता का निधन हो गया और घर का सारा उत्तरदायित्व इनके कंधों पर आ पड़ा। आर्थिक संकट का उन पर पहाड़ ही टूट पड़ा। वह दिन भर बनारस में पढ़ते, शाम को ट्यूशन पढ़ाते और रात को अपने घर पहुंचते। इस समय अपनी दशा का वर्णन करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– "जब पिता की मृत्यु हुई, घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थी, उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे भी नहीं थी। घर में जो कुछ लेई–पूंजी थी, वह पिताजी की बीमारी और क्रियाक्रम में खर्च हो गयी थी।" इस अभाव की विकरालता ने फिर भी उन्हें हताश नहीं किया। उनमें प्रगति करने की इच्छा सदैव बलवती होती रही।

उन्होंने किसी तरह हाईस्कूल पास कर लिया। फिर उन्हें पाठशाला में 18 रुपये प्रतिमाह वेतन पर पाठशाला में सह–अध्यापक की नौकरी मिल गई। इस बीच उन्हें विमाता के कटु व्यवहारों और कर्जदारों और गरीबी के अनेक कटु अनुभव हुए। अठारह रुपये की नौकरी उन्हें वरदानस्वरूप लगी। उन्होंने अपने वकील बनने के सपनों को छोड़ते हुए अध्यापक की नौकरी कर ली। प्रेमचंद एक संघर्षशील व्यक्तित्व के धनी थे अतः उन्होंने कभी परिस्थितियों के सामने सिर नहीं झुकाया। अध्यापन करते हुए ही उन्होंने साहित्य–सृजन के क्षेत्र में पैर रखा। उन्होंने पहला उपन्यास 'हम खुरमा, हम सबाब' लिखा। यह उर्दू भाषा में लिखा गया था। वे साहित्य साधना के साथ अध्ययन में भी लगे रहे। एफ.ए. करने के नौ साल बाद उन्होंने बी.ए. किया। इस बीच उन्होंने सन् 1902 में 'कृष्ण' और 1907 में इनकी सबसे पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' कानपुर के लोकप्रिय उर्दू पत्रिका 'ज़माना' में प्रकाशित हुई। सन् 1902 में प्रेमचंद इलाहाबाद के ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश लिया और 1904 में जे.सी.टी. की ट्रेनिंग प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की ट्रेनिंग समाप्त कर वह उसी स्कूल में हेडमास्टर हो गए। सन् 1908 में वह शिक्षा विभाग में सबइन्स्पैक्टर बन गए और स्थानान्तरित होकर हमीरपुर आ गए।

सन् 1985 में इनकी पहली पत्नी इन्हें छोड़कर मायके चली गई और फिर इनके यहां कभी नहीं आई। संवेदनशील और दुखी हृदय प्रेमचंद के दिन और परेशानियों और

मायूसी से कटने लगे। उसी समय उनका परिचय शिवरानी देवी नामक एक लेखिका से हुआ जो बाल विधवा थीं। उनसे प्रेरित होकर प्रेमचंद ने अपना विवाह उन्हीं से कर लिया परन्तु सरकारी नौकरी के कारण स्थान–स्थान पर भटकने व दौरों पर रहने के कारण उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसलिए उन्होंने अपना स्थानान्तरण करवा कर पुनः हेडमास्टर की नौकरी स्वीकार कर ली। इन्हीं दिनों उनकी 'पंचपरमेश्वर' नामक कहानी प्रकाशित हुई।

यह समय विश्वव्यापी आर्थिक संकट का था। सम्पूर्ण भारत में स्वतंत्रता को लेकर अशान्ति थी और स्वतंत्रता के दीवाने देशभक्त अपने प्राणों की आहुति प्रसन्नतापूर्वक दे रहे थे। वे देशभक्ति से प्रेरित होकर स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े। उनकी लेखनी देशप्रेम की कहानियों का सृजन करने लगी। प्रथम कहानी संग्रह 'सोजेवतन' के नाम से प्रकाशित हुआ। सरकार ने इस कहानी संग्रह की सभी प्रतियां जब्त कर लीं और जलवा दिया और भविष्य में कुछ भी लिखने पर प्रतिबंध लगा दिया जिसके परिणामस्वरूप वह प्रेमचंद के नाम से लिखने लगे। प्रेमचंद को अपना नाम धनपतराय ही सबसे अधिक पसन्द था और वे साहित्य क्षेत्र में प्रेमचंद के नाम से विख्यात होने पर भी पत्र–व्यवहार में पिता द्वारा रखे गये नाम का ही प्रयोग करते थे। इसी बीच गांधी जी का दौरा हुआ, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने अपनी 20 वर्ष पुरानी नौकरी छोड़ दी और पूर्णरूपेण साहित्य–रचना में जुट गए और अपनी लेखनी से जनजागरण मंत्र फूंकने लगे। इस समय तक वह 'सेवासदन' की रचना कर चुके थे और 'प्रेमाश्रम' लिखा रहे थे।

प्रेमचंद नैसर्गिक कलाकार थे और ऐसे कलाकार किसी का अस्वाभाविक बन्धन स्वीकार नहीं करते। इसी कारण उनका अधिकारियों से मतभेद होने के कारण काशी के हेडमास्टर पद से भी इस्तीफा दे दिया और सन् 1924 में अकबर–नरेश ने उन्हें अपने यहां बुलाना चाहा तो उन्होंने साफ मना कर दिया। उन्हें चापलूसी अथवा खुशामद जरा भी पसन्द नहीं थी।

सन् 1922–23 में उन्हें 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक बने जहां उन्होंने डेढ़ वर्ष तक सम्पादन किया, लेकिन वहां भी वैचारिक वैभिन्यतावश छोड़ना पड़ा। उन्हें 'माधुरी का भी संपादन कार्य 1929 में सौंपा गया। सन् 1930 में उन्होंने अपना पत्र 'हंस' निकालना शुरू किया। सन् 1923 में उन्होंने साझीदारों से मिलकर सरस्वती प्रेस की स्थापना की थी। सरकार ने उन्हें 'राय साहब' की उपाधि देनी चाही, किन्तु वे अपनी प्रतिभा का सौदा करने को तैयार नहीं हुए। सन् 1930 में अपना प्रेस खरीद लिया। उनकी पत्रिका 'हंस' सदैव अर्थाभाव से जूझती रही। सन् 1934 में उन्हें फिल्म कम्पनी में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां भी विचारों के हनन के कारण 3000/– वार्षिक प्रलोभन को छोड़कर वापस आ गए और पुनः साहित्य सेवा में लग गए। सन् 1936 में गोदान का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। इसी में उनका काफी समय बीत जाता था। सन् 1936 के 18 जून को गोर्की के निधन पर अपनी–श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मानो अपनी प्रस्थान करने की तैयारी कर ली थी। मुंशी प्रेमचंद ने 8 अक्तूबर, 1936 को विदा ली।

कृतित्व

कहानी– यद्यपि प्रेमचंद ने 250 से अधिक कहानियां लिखी हैं जो 'मानसरोवर आठ भागों में प्रकाशित हुई हैं। किन्तु प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं– 'सोजे वतन', 'सप्तसरोज', 'नवनिधि हिन्दी', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेमतीर्थ', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम प्रतिमा', 'प्रेमपंचमी', 'प्रेम–चतुर्थी', 'पांचफूल', 'कफन', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर', 'प्रेमपीयूस', 'प्रेमकुंज', 'सप्तसुमन', 'प्रेरणा', 'प्रेमसरोवर', 'अग्निसमाधि', प्रेमराधा आदि।

नाटक– 'कर्बला', 'संग्राम', 'प्रेम की वेदी'।

उपन्यास– 'इसरारे मुहब्बत', 'प्रतापचन्द्र', 'श्यामा', 'प्रेमा', 'कृष्णा', 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'गोदान', 'मंगलसूत्र'।

जीवनियां– 'महात्मा शेखसादी', 'दुर्गादास'।

बालसाहित्य– 'कुत्ते की कहानी'', 'जंगल की कहानियां', 'रामचर्चा'।

अनुवाद– 'ताल्सताय की कहानियां', 'सुखदास', 'अहंकार', 'चांदी की डिबया', 'न्याय', 'हड़ताल', 'आजादकथा', 'पिता का पत्र पुत्री के नाम', 'शबेतार', 'सृष्टि का आरम्भ'।

प्रेमचंद ने कहानीकार और उपन्यासकार दोनों रूपों में हिन्दी कथा साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन पैदा किया। सत्य और असत्य का संघर्ष ही मूलतः उनके कथा साहित्य के आधार है। उनके कथा साहित्य में एक ओर भारतीय आदर्शवादी सोच है तो दूसरी ओर यथार्थवादी दृष्टिकोण भी जो समसामयिक जीवन की विषमताओं और विसंगतियों को पूरी तीव्रता के साथ उजागर करना चाहती हैं। इसलिए अपने कथा साहित्य के विकास क्रम में वे आदर्श और यथार्थवादी शक्तियों के तनावों और अन्तर्विरोधों से गुजरते हुए आदर्शवादी ढांचे को स्वयं ही तोड़ डालते हैं। दरअसल पुराने युग की विचारधारा से प्रभावित होते हुए भी वे नये युग के साथ खड़े हैं। राष्ट्रीय जीवन और जातीय जीवन की समग्र सच्चाई उनमें मौजूद हैं।

अपने लेखों में प्रेमचंद ने बराबर इस बात पर बल दिया है कि साहित्य की अटारियों, मीनारों, और गुम्बदों की नींव मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उन्होंने शताब्दियों से पददलित शोषितों मजदूरों, किसानों व गरीबों के दुख–दर्द को अपने साहित्य में सच्ची अभिव्यंक्ति दी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना सही है कि इतने कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से वहां ले जाने वाला परिदर्शक हिन्दी–उर्दू की दुनिया में नहीं है। प्रेमचंद के साहित्य में वास्तविकता का रंग इतना चटकीला है कि उनके कलात्मक नियम भी जीवन प्रसंग से सम्बद्ध हैं। वे अपनी रचनाओं का सम्पूर्ण रूपविधान जीवन की वास्तविक जटिलताओं, तनावों और स्थितियों से बुनते हैं।

प्रेमचंद की भाषा बड़ी समृद्ध है। उन्होंने अपनी कहानियों में उर्दू शब्दों के साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों का एवं पात्रों के अनुकूल तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता कि इनमें मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग हुआ है जिसने इनकी भाषा शैली में चार चांद लगा दिए हैं।

4.3.2 पूस की रात : मूलपाठ

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा– सहना आया है। लाओ, जो रुपये रखे हैं– उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली– तीन ही तो रुपये हैं, दे दोगे तो कम्बल कहां से आवेगा? माघ–पूस की रात कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दिशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्बल के बिना हार (खेत) में रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियां जमावेगा, गालियां देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल जायेगी। यह सोचना हुआ वह अपना भारी भरकम डील लिए हुए; जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था। स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला– ला दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूंगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आंखें तरेरती हुई बोली– कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूं तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती! मैं कहती हूं, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर–मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकानी के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूंगी–न दूंगी!

हल्कू उदास होकर बोला– तो क्या गाली खाऊं?

मुन्नी ने तड़पकर कहा– गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गयीं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भांति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली– तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर धौंस।

हल्कू ने रुपये लिए और इस तरह बाहर चला, मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक–एक पैसा काट–काटकर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किए थे। वह आज निकल जा रहे थे। एक–एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

(2)

पूस की अंधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा कांप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूं–कूं कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गरदन में चिपकाते हुए कहा– क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहां क्या लेने आए थे! अब खाओ ठंड, मैं क्या करुं! जानते थे मैं यहां हलुआ–पूरी खाने आ रहा हूं, दौड़े–दौड़े आगे–आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े–पड़े दुम हिलायी और अपनी कूं–कूं को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान–बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूं–कूं से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा– कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह रांड पछुआ न जाने कहां से बरफ लिए आ रही है! उठूं, फिर एक चिलम भरूं। किसी तरह रात तो कटे! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक भागवान ऐसे पड़े हैं जिनके पास जाड़ा जाए तो गरमी से घबड़ाकर भागे। मोटे–मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल। मजाल है जाड़े का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!

हल्कू उठा, गड्ढे में से जरा–सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा– पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है; हां, जरा मन बदल जाता है।

जबरा ने उसके मुंह की ओर प्रेम से छलकती हुई आंखों से देखा।

हल्कू– आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहां पुआल बिछा दूंगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अपने पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिए और उसके मुंह के पास अपना मुंह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म सांस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊंगा; पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भांति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद में चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था; जिसने आज उसे इस दशा को पहुंचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक–एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पायी। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नयी स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी के बाहर आकर भूंकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया;

पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़–दौड़कर भूंकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरन्त ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भांति उछल रहा था।

(3)

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उनमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रही है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है! सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जाएंगे तब कहीं सबेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियां बटोरूं और उन्हें जलाकर खूब तापूं। रात को कोई मुझे पत्तियां बटोरते देखे तो समझें, कोई भूत है। कौन जाने, कोई जानवर ही छिपा बैठा हो; मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उसका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा, पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा– अब तो नहीं रहा जाता जबरू! चलो बगीचे में पत्तियां बटोरकर तापें। टांटें हो जाएंगे, तो फिर आकर सोएंगे। अभी तो बहुत रात है।

जबरा ने कूं–कूं करके सहमति प्रकट की और आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अंधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूंदें टपटप नीचे टपक रही थी।

एकाएक एक झोंका मेहंदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा– कैसी अच्छी महक आयी जबरू! तुम्हारी नाक में कुछ सुगंध आ रही है?

जबरा को कहीं जमीन पर हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे निचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियां बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पांव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू–छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होथे थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर संभाले हुए हों। अंधकार के उस अथाह सागर से यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। आज क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली, दोनों पांव फैला दिए, मानों ठंड को ललकार रहा हो। 'तेरे जी में आए

सो कर।' ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजयगर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा– क्यों जबरा, अब ठंड नहीं लग रही है?

जबरा ने कूं–कूं करके मानो कहा– अब क्या ठंड लगती ही रहेगी?

'पहले से उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते!'

जबरा ने पूंछ हिलाई।

'अच्छा, आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूंगा।'

जबरा ने उस अग्नि–राशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

'मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी।'

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया! पैरों में जरा लपट लगी; पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा– चलो–चलो, इसकी सही नहीं! ऊपर से कूदकर आओ! वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया!

(4)

पत्तियां जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अंधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ–कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी; पर एक क्षण में फिर आंखें बंद कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी; पर ज्यों–ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा जोर से भूंककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुंड था। उनके कूदने–दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर–चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा कि– नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहां! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज लगाई– जबरा, जबरा।

जबरा भूंकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े–पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असह्य जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगाई– हिलो! हिलो! हिलो!!

जबरा फिर भूंक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी; पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो–तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक का–सा भांका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भांति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गयी थी और मुन्नी कह रही थी– क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहां आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा– क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली– हां, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला, ऐसा भी कोई सोता है! तुम्हारे यहां मंड़ैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया– मैं मरते–मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूं!

दोनों फिर खेत के डांड़ पर आए। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जबरा मंड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हो।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा– अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा– रात को ठंड में यहां सोना तो न पड़ेगा।

4.3.3 कथासार

'पूस की रात' कहानी का नायक एक किसान है, जिसे अपनी फसल की बर्बादी से दुखी होने के बजाय प्रसन्नता होती है। क्या यह संभव है। संभव–असंभव को दरकिनार कर यदि इस बात पर गौर करें कि दिन–रात कठिन परिश्रम से फसल उगाने वाले किसान, जिसकी समूची जमा पूंजी वही है, उसी के सहारे उसका जीवन टिका है, उसके नष्ट होने पर वह खुश किस बात पर हो रहा है। एक झटके में यह बात अविश्वसनीय–सी लग सकती है, लेकिन 'पूस की रात' की सच्चाई यही है।

इस सच्चाई को जानने के लिए 'पूस की रात' वाली घटना पर्याप्त नहीं है और न ही हो सकती है। इस सच्चाई को जानने के लिए आपको हल्कू के 'हृदय' में प्रवेश करना पड़ेगा। उसके दर्द को महसूसना होगा। उसकी बेबसी को जानना होगा।

कहानी मुख्य रूप से चार प्रसंगों में विज्ञापित है। पहले प्रसंग में– पति–पत्नी की खींचा–तानी है। उलाहना है। खुशामद है। कहानी की शुरुआत कुछ इस तरह से होती है– 'हल्कू ने आकर स्त्री से कहा– सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।' सहना का कर्जदार है हल्कू। मजदूरी करके पाई–पाई जोड़कर तीन रुपये जमा किए हैं कम्बल खरीदने के वास्ते। वह तीन रुपया सहना को दे देना चाहता है। उसे कर्ज से मुक्ति चाहिए। सहना का गाली–गलौज वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। सर्दी में मरने–खपने को तैयार है वह लेकिन सहना की हुड़कियां और गालियां सुनने को राजी नहीं।

मुन्नी अर्थात् हल्कू की पत्नी पैसे देने को तैयार नहीं है। वह जानती है यदि पैसा चला गया तो माघ–पूस की रात बिना कम्बल के कैसे कटेगी। हल्कू बगैर कम्बल के जाड़े की रात काट लेगा मगर किसी की धौंस नहीं सुनेगा। मुन्नी रोष में है। उसे लगता, 'न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने की नहीं आती।' वह तिलमिलाहट से कहती है– 'तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते।' क्या कोई किसान खेती कैसे छोड़ दे! प्रेमचंद इस प्रसंग में खेती किसानी की जटिलता मात्र एक पृष्ठ में उभार कर रख देते हैं। किसानों के लिए खेती छोड़ने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं। मुन्नी इसी बात को दुबारा दोहराती है– 'तुम छोड़ दो अबकी से खेती।' मुन्नी को यकीन है कि 'मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को मिलेगी।' किसानी से वह भी नसीब नहीं। यही किसान जीवन की वास्तविकता है। कहानी के इस प्रसंग किसानी जीवन का ब्यौरा नहीं है बल्कि उसकी बदलती हुई चेतना का रेखांकन अधिकार प्रेमचंद उसके जीवन को नहीं टटोलते बल्कि भारतीय किसानों की बदलती हुई मनःस्थितियों को उजागर करते हैं।

हल्कू अपनी जमा पूंजी सहना को दे चुका है। अब उसके पास उतने रुपये नहीं कि पूस की रात से बचने के लिए एक कम्बल खरीद सके। यहां कम्बल उतना जरूरी नहीं, जरूरी है फसल की रखवाली। कहानी के दूसरे प्रसंग में हल्कू अपने खेत की रखवाली कर रहा है। इस प्रसंग में प्रेमचंद सबसे पहले पूस की रात का चित्र कुछ इस तरह से खींचते हैं– 'पूस की अंधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े को चादर ओढ़े पड़ा कांप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूं–कूं कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।' इस जाड़े की रात में हल्कू का संगी जबरा है। खेती की रखवाली का जिम्मा उसकी भी कम नहीं। मालिक को वह अकेले कैसे छोड़ दे? हल्कू जबरा से कहता है– 'क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहां क्या लेने आये थे। अब खाओ ठंढ़, मैं क्या करूं।' हल्कू का जबरा के प्रति आदमीय रिश्ता बहुत गहरा है। अपना कष्ट उसे स्वीकार है लेकिन जबरा यदि घर पर ही रह जाता तो कम–से–कम वह इस कड़ाके की ठण्ड से बचता लेकिन इस भयानक सर्दी की रात में हल्कू का आसरा जबरा ही है, जिससे वह अपना सुख–दुख बांट सकता है। आठ–आठ चिलम पीने के बाद भी ठण्ड जाने को नाम नहीं लेता। रात कटने को तैयार नहीं। जब हल्कू से नहीं रहा जाता, तब वह जबरा को अपनी गोदी में सुलता है। अजीब–सी मैत्री है उन दोनों के बीच। अजीब–सा अपनापना 'हल्कू

की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा को गंध तक न थी।' अपने मालिक से जबरा इतना स्नेह पाकर यह समझने लगा कि शायद स्वर्ग यही है। इतनी आत्मीयता पाकर उसमें नई स्फूर्ति पैदा हो गई है। ठण्ड उसके आगे घुटने टेकने को लाचार है। प्रेम का रिश्ता करिश्माई होता है और हर जगह समान भी। भावनात्मक आदान–प्रदान अक्सर गुणात्मक होता है। आप जितना प्रेम देंगे उसका दस गुणा मिलेगा। नफरत जितना देंगे, उसका दस गुणा नफरत बदले में मिलेगा। यही गणित है भावनात्मक संबंधों का। एक–दूसरे के लिए प्राण न्यौछावर के लिए सदैव तत्पर। जबरा किसी जानवर की आहट सुनकर खेत की तरफ लपकता है। ठण्ड अब उसके लिए तुच्छ है। जानवर की आहट के प्रतिरोध में वह भूंकना शुरू करता है 'कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भांति उछल' रहा है। इसी स्थान पर 'पूस की रात' का दूसरा प्रसंग समाप्त होता है।

तीसरे प्रसंग में रात आधी बीत चुकी है। ठण्ड ने अपना रौब दिखना शुरू कर दिया है। हल्कू को लगता है मानो उसकी धमनियों में रक्त की जगह बर्फ बह रहा हो! रात अभी आधी बाकी है। हल्कू की आंखों से नींद गायब है। हल्कू के लिए अब ठण्ड बर्दाश्त करना मुश्किल हो रहा है। उसने पत्तियों का ढेर लगाया और अलाव बना दिया। हल्कू अलाव के सामने बैठा आग तापता है। ठण्ड को मानो उसने पछाड़ दिया हो। हल्कू को पछतावा होता है यह उपाय उसे पहले क्यों नहीं सूझी। अगर वह पहले ही आग जला लेता तो इतनी ठण्ड झेलने की नौबत न आती। ठण्ड का प्रकोप कम हो चुका था।

क़हानी का तीसरा प्रसंग यही खत्म होता है और चौथे प्रसंग में हल्कू नींद के आगोश में जा चुका है। पर ज्यों–ज्यों शीत लहर बढ़ती, आलस्य भी बढ़ता जाता है। जबरा जोर–जोर से भूंक रहा है। हल्कू को भी अहसास हो रहा कि जानवरों का झुण्ड खेत में जा घुसा है। फसल चरने की आवाज को वह साफ–साफ सुन सकता है फिर आलस्य के मारे दुबका पड़ा है। वह जानता है जबरा के रहते कोई जानवर खेत में नहीं घुस सकता। हल्कू को लगता है कि उसे भ्रम हो रहा है। लेकिन थोड़ी देर के बाद उसका सारा भ्रम जाता रहा। उसे अब खेत चरे जाने की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही है। जबरा भौंकना जारी रखा है। हल्कू उठकर दो–चार कदम चलता है कि फिर ठण्डे हवा का झोंके से अलाव के पास जा बैठता है। एक तरफ जानवर फसल सफाया कर रहा है, दूसरी तरफ हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठे हुए हैं। इस तरह की अकर्मण्यता वास्तव में किंसी को भी चौंका सकता है। 'हल्कू' अपने फसल को बचाने के बजाय चादर खींचकर सो जाता है। यह अपने आप में भयानक है। अपनी फसल से कोई मोह नहीं। जानवर चरता है तो चरे। फसल बर्बाद करता है तो करे।

रात बीत चुकी है। चारों तरफ धूप फैल गई है लेकिन हल्कू की नींद टूटी नहीं है। नींद तब टूटती है, जब मुन्नी आकर जगाती है। वह यह भी सूचना देती है कि 'तुम यहां आकर रम गये और उधर सारा खेत चौपट हो गया।' हल्कू पेट दर्द का बहाना बनाता है। टांड़ में आकर देखता है कि सारा खेत रौंदा पड़ा है। जबरा मड़ैया के नीचे इस तरह चित लेटा है कि मानो उसमें जान ही न हो। जबरा अपने मालिक के खेत की रखवाली न कर पाने की वजह से चेतना शून्य हो गया है। मुन्नी भी उदास है पर हल्कू को कोई गम नहीं खेत के उजड़ने का। मानो वह यही चाहता था। मुन्नी जब कहती है– 'अब मजूरी करके

मालगुजारी भरनी पड़ेगी।' हल्कू प्रसन्न होकर जवाब देता है कि– 'रात की ठण्ड में यहां सोना तो न पड़ेगा।'

सवाल यहां गंभीर है क्या वास्तव में खेती–किसानी इतनी जटिल हो गई है कि किसान अब इससे मुंह फेरने में अपनी भलाई समझ रहा हूं।' जवाब 'हां', में है। प्रेमचंद ने सत्तर वर्ष पहले जिस चीज के लिए अगाह कर दिया था, उससे हम तनिक भी सचेत नहीं हुए। बल्कि ज्यादा लापरवाह हो गए। नतीजा सबके समक्ष है। किसानों की आत्महत्या का लम्बा सिलसिला जो शुरू हुआ था वह आज भी थमने का नाम नहीं ले रहा है। प्रेमचंद का 'हल्कू' किसानी छोड़कर मजूरी करने को तैयार था लेकिन आज का किसान जीने को तैयार नहीं है। वह सब कुछ को भूलकर मरने को सार्थक मान बैठा है। वास्तव में 'पूस की रात' 'जानवरों के द्वारा समूचा खेत नष्ट कर देना' एक प्रतीक की तरह हमारे सामने आता है। हल्कू जानवरों को पहचानता है लेकिन उसके सामने जैसी विकट परिस्थिति बन चुकी है वह उस जानवर से संघर्ष करना नहीं चाहता। बल्कि उसे 'स्पेश' देता है। निस्संदेह किसानी मानसिकता का अद्‌भुत आख्यान बनकर सामने आती है यह कहानी।

प्रेमचंद की कथा–भाषा हिन्दी साहित्य की उपलब्धि है। रामविलास शर्मा ने उनकी भाषा का विश्लेषण करते हुए लिखा है– "प्रेमचंद की सफलता का रहस्य बहुत कुछ उनकी भाषा में है।" वास्तव में, प्रेमचंद की सहज, सरल और अर्थपूर्ण भाषा में एक सम्मोहन है। उन्होंने उत्कृष्ट कथा–भाषा का निर्माण उस दौर में किया था। जब उर्दू–हिन्दी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही थी। प्रेमचंद ने उर्दू–हिन्दी का समन्वय कर एक नयी रचनात्मक भाषा का निर्माण किया। इनकी कथा–भाषा समूचे हिन्दी साहित्य के लिए एक उपलब्धि है।

प्रेमचंद ने अपने पूरे साहित्य में ग्रामीण सहज बोलचाल की भाषा का उपयोग किया है। ग्रामीण जीवन के मुहावरे और लोकोक्तियों से भरी उनकी भाषा में गजब का प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति है। विनोद और व्यंग्य का घुल–मिला रूप उनकी कहानियों में भाषा को गहराई प्रदान करती है। प्रेमचंद शब्दों के चयन को लेकर भी पूरी तरह सचेत रहे हैं। उन्हें मालूम है शब्दों से प्रभाव किस तरह उत्पन्न किया जाता है। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी के शब्दों का भरपूर उपयोग अपनी रचनाओं में किया है। लोक में प्रचलित शब्दों को उन्होंने गरिमामय तरीके से पेश किया।

प्रेमचंद की भाषा समाज के विसंगतियों और विकृतियों की शिनाख्त करने में पूरी तरह समर्थ है। वे जिस तरह से वाक्य–विलास करते हैं, उससे पूरी घटना का मूर्त रूप दिखाई पड़ने लगता है। प्रेमचंद ने जिस बोधगम्य भाषा का इस्तेमाल अपनी कहानियों में किया है, संभवतः अपनी संवेदनशीलता से कोई दूसरा रचनाकार नहीं कर सका। इस कारण ही आज भी प्रेमचंद की कथा–भाषा का रूप मानक बना हुआ है।

4.3.4 मुख्य अवतरणों की व्याख्या

(1) हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कंबल के बिना हार में रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नहीं। घुड़कियां जमावेगा, गालियां देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल

जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी–भरकम डील–डौल लिए हुए (जो उसके नाम को झूठा सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला– ला दे दे, गला तो छूटे। कंबल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूंगा।

शब्दार्थ– हार = फसल से युक्त खेल।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्य–खंड प्रेमचंद रचित कहानी 'पूस की रात' से उद्धृत है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया है। उस समय महाजनों, जमींदारों का किसानों, मजदूरों के प्रति कैसा व्यवहार होता था, उसका बहुत ही मार्मिक चित्रण करने में सफलता प्राप्त की है। हल्कू एक गरीब किसान है। उस समय किसान सरकार और जमींदार के बीच किस कदर पिसता है, प्रकृति उनको किस प्रकार जमींदारों के समक्ष नाक रगड़ने को मजबूर करती है, इसका हृदयविदारक चित्र खींचने का प्रयास लेखक ने किया है।

व्याख्या– हल्कू महाजन के आदमी सहना के एकाएक घर–पर आ जाने से परेशान हो उठता है। सहना फसल की मालगुजारी लेने आया था। जब वह किसानों के यहां वसूली पर जाता, पैसे न मिलने पर वह किसानों के साथ गाली–गलौच जैसी बदसलूकी करता। हल्कू ने किसी तरह पेट काटकर अबकी ठंड से पहले एक कंबल खरीदने के लिए तीन रुपये बचा रखे हैं क्योंकि फसल की रखवाली के लिए उसे रात में खेत पर सोने जाना पड़ता है जिससे जंगली जानवर फसलों का नुकसान न कर सकें। लेकिन जब सहना उसके घर आ धमकता है तो वह असमंजस में पड़ जाता है कि वह क्या करे? एक तरफ उसे रात की ठंड याद आती है, उसकी भयावहता सोच कर वह कांप उठता है तो दूसरी ओर सहना का क्रूर व्यवहार। अंत में सहना के क्रूर व्यवहार के समक्ष आत्मसम्मान की रक्षा के लिए वह झुक जाता है। वह रात में ठिठुरकर बिता लेना अच्छा समझता है अपेक्षाकृत सहना के क्रूर और अश्लील व्यवहार से। वह सोचने लगता है, बिना कंबल के तो रात कट जाएगी किसी न किसी तरह, किन्तु सहना बिना रुपये लिए मानेगा नहीं, गालियां देगा, बदसलूकी करेगा। वह सोचने लगता है, जाड़ों में मर जाना ठीक है लेकिन इसकी बातें और अपमान सहना नहीं। अपने मन में यही सोचते हुए अपनी काया लिए पत्नी के पास आ गया। उससे खुशामद करते हुए पैसे मांगता है कि लाओ कम्बल के लिए रखे पैसे दे दो, उसे देकर अपना गला छुड़ाऊं। वह अपनी पत्नी को सान्त्वना देते हुए कहता है, कंबल फिर खरीद लूंगा।

इस गद्य खंड में लेखक ने पति के प्रति पत्नी के अनुराग को व्यक्त करते हुए दिखाया है कि वह पत्नी से डरता है पैसे मांगने में, कि वह सुनते ही बिगड़ जाएगी। उसके बिगड़ने का भाव पति के प्रति प्यार का ही द्योतक है क्योंकि पति ठंडी की रात में खेतों की रखवाली के लिए जाता है। इसीलिए पत्नी के समक्ष डरते हुए जाता है।

(2) पूस की रात अंधेरी रात। आकाश पर तारे ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े चादर ओढ़े पड़ा कांप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूं–कूं कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण प्रेमचंद द्वारा रचित 'पूस की रात' नामक कहानी से उद्धृत है। 'पूस की रात' कहानी मुंशी प्रेमचंद की यथार्थ विषय पर की गयी रचना है जिसमें उन्होंने तत्कालीन समाज, वातावरण, जलवायु और सामाजिक व्यवस्था को यथार्थ चित्रण किया है। प्रस्तुत गद्यांश में कहानीकार ने प्रकृति के उस स्वरूप का वर्णन किया है जिसमें सामन्ती वर्ग सुखानुभूति का अनुभव करता है परन्तु सर्वहारा वर्ग– गरीब, मजदूर, किसान– अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करता है और जीवन अभाव में काटता है। इस अवतरण में हल्कू जमींदार के अमानवीय व्यवहार से तो पीड़ित है ही, अपनी खेत में खड़ी फसल की सुरक्षा में पूस की चिलचिलाती ठंड में रातभर खेत में खुले आसमान के नीचे बिना पर्याप्त ओढ़ने–बिछाने की व्यवस्था के ठंड से कांपते हुए खेत की रखवाली करता है। अभाव इतना है कि वह अपने लिए एक कंबल तक नहीं खरीद सकता। इन विपन्न परिस्थिति में सर्वहारा वर्ग का साथ भी कोई देने वाला नहीं होता। हल्कू के पास एक कुत्ता है– जबरा जो उसके सुख–दुख का साथी है।

व्याख्या– कहानीकार प्रस्तुत गद्यखंड में पूस महीने में पड़ने वाली विकट ठंडी का वर्णन करते हुए कह रहा है– पूस महीना ठंडी के महीने का मध्यकाल है जब ठंड अपनी यौवन पर होती है, रात अंधेरी, सुनसान स्थान में ठंड और अधिक लगती है। भीड़–भाड़ वाले स्थान में आदमी ठंड झेलते हुए भी एक–दूसरे से बातें कर के रात काट भी सकता है, किन्तु जब आदमी नीरस स्थान पर हो तो मन केवल ठंड पर ही केंद्रित होकर वास्तविकता से अधिक ठंड महसूस करने लगता है, उसी स्थिति का वर्णन इन पंक्तियों में है– पूस की अंधेरी रात थी। ठंड इतनी पड़ रही थी कि शीत पड़ने के कारण आसमान में तारे इस प्रकार झिलमिलाते दिखाई दे रहे थे मानों वे भी ठंड से सिकुड़ते जा रहे थे। इस चिलचिलाती ठंड में हल्कू अपने खेत के बगल में शीत से बचने के लिए गन्ने की पत्तियों से बनी छतरी के नीचे अपनी पुरानी मोटे सूत की बनी चादर ओढ़े कांप रहा था। उसकी खाट के नीचे उसके इन कठिन दिनों का साथी जबरा कुत्ता ठंडी के कारण अपने देह में मुंह डाले कूं–कूं कर रहा था। ठंड इतनी अधिक थी कि दोनों में से किसी को भी नींद न आती थी।

इन पंक्तियों में लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य का हृदय इतना क्रूर होता है कि सहना बिना ठंड की परवाह और हल्कू की गरीबी का ध्यान किये उसके कंबल खरीदने के लिए रखे रुपये ले जाता है। उसे यह ख्याल नहीं रहता कि आखिर इस गरीब का बसर कैसे होगा? किन्तु जानवर होकर भी एक कुत्ता उसके साथ रात भर ठंड सहते हुए भी साथ देता है। इस प्रकार लेखक ने अमीरवर्ग की हृदय शून्यता का बहुत सफलतापूर्वक वर्णन किया है।

(3) हल्कू ने हाथ निकाल कर जबरा की पीठ सहलाते हुए कहा– कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह रांड पछुआ न जाने कहां से बरफ लिए आ रही है। उठूं, फिर हम चिलम भरूं। किसी तरह रात तो कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है। और हम एक भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाए तो गर्मी से घबड़ाकर भागे। मोटे–मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल। मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण प्रेमचंद रचित 'पूस की रात' नामक कहानी से उद्धृत है। इस कहानी में प्रेमचंद ने समसामयिक सामाजिक, प्राकृतिक आर्थिक कठिनाइयों का सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया है। पूस के महीने में पड़ने वाली ठंड, इस बर्फ सी ठंडी की अंधेरी उस पर भी चलने वाली पछुआ हवा और खुला आसमान के नीचे पड़े दो प्राणी–शरीर के रक्त को जमा देने वाली ठंड का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है।

व्याख्या– हल्कू अपने मोटे गाढ़े चद्दर से हाथ निकालकर अपने इस ठिठुरन भरी ठंड के साथी जबरा की पीठ सहलाते हुए बोला– मानो वह किसी व्यक्ति से कह रहा हो– कल से मत आना मेरे साथ नहीं तो तुम भी इस ठंड में मर जाओगे। इस ठंड भरी रात में चलती हुई पछुआ हवा को जो ठंड की अनुभूति में कई गुना वृद्धि कर देती है, को कोसता हुआ कह रहा है कि एक तो पूस के महीने में वैसे ही ठंड बहुत ज्यादा पड़ती है, उस पर यह पछुआ हवा और भी ठंड में वृद्धि करती जा रही है। वह स्वगत ही बोला– उठूं, एक चिलम और भरूं। वह मन ही मन सोच रहा है, यह चिलम कितनी ठंड रोक लेगी अब तक तो आठ बार चिलम चढ़ा चुका है फिर भी ठंड नहीं गई। यह तो ठंड न लगने का एक मात्र बहाना है। यही सब सोचते हुए वह अपने भाग्य पर रोने लगा। वह अपने मन में कोसने लगा– यह है खेती करने का आनन्द कि रात–दिन पर न खाने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना। एक–एक किस्मत वाले ऐसे हैं कि जिनके पास इतने साधन हैं कि ठंड उनके पास जाने से भी घबराती है। उनके पास बिछाने के मोटे–मोटे गद्दे लिहाफ और कम्बल, क्या मजाल की ठंड उनके यहां पहुंच सके। भाग्य भी बड़ी प्रबल है। यह तो मनुष्य की जिन्दगी की बैल और घोड़े के समान है कि सीने फाड़ के बैल धरती को चीरकर अन्न उपजाने में मदद करता है किन्तु चने घोड़े खाते हैं। ठीक वही स्थिति एक किसान और जमींदार की है।

इस गद्य खण्ड की पंक्तियों से साम्यवादी विचारों की झलक मिलती है जो एक मजदूर के हृदय में पूंजीपति को देखकर उत्पन्न होती है।

4.3.5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'पूस की रात' की समीक्षा

हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचंद भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से बहुत महान हैं। पहली बार कथा के सच्चे तत्व उनके कथा–साहित्य में अंकुरित और विकसित हुए हैं। वे निश्चय ही हमारे प्रथम कलाकार हैं। उनकी कहानी–कला के विवेचन से यह बात सर्वथा स्पष्ट है। कथानक की दृष्टि से प्रेमचंद का कथा–साहित्य बड़ी व्यापकता लिए हुए है। ऐतिहासिकता, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों से उन्होंने अपनी कहानियों के कथानक लिए हैं। सामाजिक कहानियों में प्रेमचंद को विशेष रूप से सफलता मिली है। ऐसी कहानियों में उन्होंने समाज सुधार, ग्रामीण नागरिक और नारी जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओं का चित्रण किया है।

अछूतोद्धार, विधवा विवाह, देवी–देवता, भूत–प्रेत, अंधविश्वास, घूसखोरी, राजकर्मचारियों के अत्याचार, स्वदेश प्रेमियों का त्याग और बलिदान, जमींदारों की निरंकुशता, किसानों की दुर्दशा, वकीलों की कतरब्योंत, महाजनों की सूदखोरी, विमाता की निर्ममता, शिष्यों की गुरुभक्ति और उद्दंडता आदि भारतीय जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं है, जो उनकी कहानियों के विषय में आधार न बनी हो।

जिन घटनाओं को प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में स्थान दिया है उन्हें बड़े कलात्मक ढंग से हमारे सामने रखा है। तिलिस्मी कहानी की भांति वे केवल वैचित्र्य और कौतूहल प्रधान नहीं हैं, उनका कार्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं है, बल्कि वे एक निश्चित उद्देश्य और सिद्धांत को लेकर चलती हैं।

प्रेमचंद की कहानियों के कथोपकथन भी बड़े स्वाभाविक और सजीव हैं। वे सर्वत्र, देश, काल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुकूल हैं। वह शिक्षित–अशिक्षित, राजा–रंक, सेठ–मजदूर सबके मुंह से मर्यादानुकूल उसी की भाषा में बातचीत कराते हैं। इसके साथ ही वह कथोपकथन की सुसंबद्धता, उसकी शृंखला और नियंत्रित स्वरूप का भी ध्यान रखते हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में परिस्थितियों एवं वातावरण का चित्रण बड़े कौशल से किया है। उनके सभी वर्णन सजीव और कथानक के विकास में सहायक हुए हैं। घटनाओं के वर्णन में, घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण में, पात्रों के चरित्र को प्रस्तुत करने में सचमुच प्रेमचंद सिद्धहस्त हैं। उनका वर्णन इतना सजीव होता है कि कथा का रूप बिल्कुल जीते–जागते चित्र के समान हमारे सामने खिंच जाता है। पात्र हमारे सामने ही बोल रहे हों। कहीं–कहीं तो यह वर्णन प्रेमचंद की कहानियों का दोष बन गया है। इससे कहानियों में आवश्यक विस्तार हो गया है।

प्रेमचंद की कहानी–कला की उत्कृष्टता का बहुत श्रेय उनकी भाषा को है। प्रेमचंद भाषा के सचमुच के सम्राट हैं। उच्च साहित्यिक हिन्दी, बोलचाल की हिन्दी, उर्दू–हिन्दी के संयोग से बनी हिंदुस्तानी सभी प्रकार की भाषाएं उनकी चेरी थीं और अपने स्वामी के पीछे हाथ जोड़े फिरती थीं। शब्दों का तो उनके पास अटूट खजाना था। अपनी भाषा के द्वारा वे हर भाव को चाहे जैसे व्यक्त कर सकते थे। उनकी भाषा का क्षेत्र सचमुच इतना व्यापक है कि उसमें साहित्य का विद्वान भी, उर्दू का मौलवी भी, गांव का अशिक्षित किसान भी, नगर के प्रतिष्ठित जन, वकील, डॉक्टर, अपनी–अपनी रुचि की भाषा को पा सकते हैं। प्रेमचंद की ऐसी भाषा सरल, सजीव और सादगीपूर्ण है। वह जन समाज द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली भाषा है। कृत्रिमता और आडंबर तो उसमें नाममात्र को भी नहीं है। देश और पात्र के यह सर्वथा अनुकूल है। उनके मुसलमान पात्र खालिस उर्दू बोलते हैं और ग्रामीण पात्र अपनी गांव की भाषाएं। ऐसी स्वाभाविक भाषा बड़ी जिंदादिली लिए हुए है। उसमें बड़ा लोच और रवानगी है। मुहावरों और कहावतों के सफल प्रयोग ने उनके भाषा–सौंदर्य में चार चांद जड़ दिए हैं। भाषा की भांति शैली के भी अनेक रूप हमें देखने को मिलते हैं। यह वर्णनात्मक, संकेतात्मक, चित्रात्मक नाटकीय और हास्य–व्यंग्य प्रधान सभी कुछ है। शिल्प विधान की दृष्टि से प्रेमचंद ने ऐतिहासिक, नाटकीय, आत्मचरित्रात्मक, पत्रात्मक, डायरी–शैली आदि सभी शैलियों में अपनी कहानियां लिखी हैं। ऐतिहासिक शैली को अवश्य उन्होंने अधिक प्रधानता दी है। इस प्रकार की शैली में लिखी गई कहानियों में उन्हें सफलता भी खूब मिली है।

प्रेमचंद का कथा–साहित्य सोद्देश्य है। वह मनोरंजन के लिए नहीं लिखा गया। वह किसी न किसी निश्चित सोद्देश्य का प्रतिपादन करता हुआ चला है। प्रेमचंद का अपना जीवन–दर्शन है, अपनी विचारधारा है, इसी ने उनके कथा–साहित्य के घटना–चक्र को

जन्म दिया है और पात्रों की सृष्टि की है। उद्देश्य रूप में प्रेमचंद की कहानियों का मूलाधार परिस्थितियों के बीच मानव–चरित्र की कमजोरियों को दिखाकर उनका बहिष्कार करना है। इसी रूप में प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी, यथार्थवादी कलाकार हैं। यथार्थवादी रूप में प्रेमचंद का साहित्य समाज के घिनौने रूप को हमारे सामने रखता है, आदर्शवादी रूप में वह हमें इस घिनौने रूप को बदलने की प्रेरणा देता है। यथार्थवाद और आदर्शवाद का ऐसा सुंदर समन्वय ही प्रेमचंद के कथा–साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

हिन्दी कथा–साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचंद का कथा–साहित्य इतना विशाल और व्याप्त है कि उसमें पूरा एक युग समा गया है। एक तरह से वे स्वयं एक कहानी युग के पर्याय थे जिसमें हिन्दी के सच्चे तत्व अंकुरित हुए, विकसित हुए और उनसे भारतीय साहित्य में सुगंधि आई। बांग्ला कहानी साहित्य में टैगोर की भांति उन्होंने हिन्दी कहानी को प्रेरणा दी और उनके भाव क्षेत्र को अधिक से अधिक संपन्न बताया। आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने प्रेमचंद के विषय में लिखा था–

"आपकी कहानियां हिन्दी संसार में अनूठी चीज हैं। हिन्दी पत्र–पत्रिकाएं आपकी गल्पों के लिए लालायित रहती हैं। कुछ लोगों का विचार है आपकी गल्पें मार्तण्ड रवींद्र बाबू की रचना से टक्कर लेती हैं। ऐसे विद्वान और प्रसिद्ध लेखक के विषय में विशेष लिखना अनावश्यक और अनुचित होगा।"

वास्तव में प्रेमचंद हिन्दी कहानी–साहित्य के युग–प्रवर्तक कलाकार हैं क्योंकि उनकी कहानियों में ही हमें प्रथम बार आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य के नये युग के दर्शन प्राप्त होते हैं। प्रेमचंद से पूर्व जो हिन्दी कहानियां समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रही थीं वे नाम–मात्र की कहानियां थीं। कहानी कला के सच्चे तत्व उनमें नहीं थे। प्रेमचंद का समग्र साहित्य भाव और कला की दृष्टि से अद्वितीय है। पहली–पहली बार कथा के सभी तत्व उनकी रचनाओं में अपने पूर्ण निखार के साथ देखे गए जिनका अनुसरण उनके बाद के कथाकारों ने किया।

कथानक

कथानक की दृष्टि से प्रेमचंद के कथा–साहित्य का कैनवास बहुत व्यापक है। उसमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और कौतुहल आदि सभी बिंदु अपनी पूर्ण छटा के साथ उभर कर आते हैं। इनमें भी सामाजिक दृष्टिकोण और उसकी पकड़ उनकी रचनाओं में देखते ही बनती है। विसंगतियों का भंडार उनकी रचनाओं में समाया हुआ है। कहीं वे समाज को सुधारने की बात करते हैं तो कहीं नारी जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत करने लगते हैं। ग्रामीण, और उनमें भी निम्न, गरीब और शोषित वर्ग उनकी कहानियों का विशेष आकर्षण रहे हैं, जहां आम पाठक उनसे जुड़े बिना नहीं रहता। उनमें वह अपने को कहीं न कहीं खड़े अवश्य ही पाता है। प्रेमचंद की कहानियों के कथानक बड़े ही स्वाभाविक होते हैं। उन कथानकों को वे बड़ी कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों के पात्र मात्र मनोरंजन ही नहीं करते बल्कि एक उद्देश्य और सिद्धांत के साथ दिखलाई देते हैं।

चरित्र–चित्रण

उनकी कहानियों में मानव–चरित्रों की बुनावट बड़ी ही सहज, सरल तथा स्वाभाविक होती है। सच कहा जाए तो प्रेमचंद के पहले का हिन्दी साहित्य कहानी के इस मूल तत्व से बिल्कुल ही अछूता था।

चरित्र प्रधान कहानियों को लिखने वालों में प्रेमचंद सर्वप्रथम स्थान पर रहे हैं। उनकी कहानियों के चरित्र काल्पनिक न होकर समाज के ही जीवंत अंग होते हैं। तभी तो उनकी कहानियां वास्तविकता के अधिक समीप होती हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद को मनोवैज्ञानिक माना जाता है। वे सामने वाले के मनोभावों को सहज ही ताड़कर अपनी कहानी के चरित्रों का हिस्सा बना लेते थे। उनके चरित्रों में अच्छाई–बुराई सभी कुछ है। उनकी कहानियों में मजदूर, किसान, सेठ, डॉक्टर, जमींदार, अध्यापक, विद्यार्थी, वैज्ञानिक, बाल–वृद्ध, नर–नारी, विधवा, विमाता, शराबी, संत, महात्मा, भिखारी और चपरासी आदि सभी के चरित्र देखने को मिल जाते हैं। पाठक सहज ही अपने आप को उनमें देख लेता है, अनुमान लगा लेता है। इन सभी के चरित्रों को प्रेमचंद ने अपनी कलात्मक दृष्टि से अपनी रचनाओं में खूब स्वाभाविक रूप से उभारा है।

कथोपकथन

कथोपकथन की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियां बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव बन पड़ी हैं। उनमें भारत के जनजीवन की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। उनकी रचनाएं देश, काल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुरूप गढ़ी गई हैं। उनके पात्र मर्यादानुकूल ही भाषा का प्रयोग करते हैं। साथ ही कथोपकथन के नियंत्रित स्वरूप को भी ध्यान में रखते हैं।

देशकाल, वातावरण योजना

प्रेमचंद की प्रत्येक रचना में देशकाल और वातावरण पूर्णरूपेण स्वाभाविक रूप से उभर कर आते हैं। घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण में, पात्रों के चरित्र के प्रस्तुतीकरण में प्रेमचंद अद्वितीय हैं। उनका वर्णन अत्यंत सजीव रहता है। अपनी रचनाओं के वातावरण का ताना–बाना बुनने में प्रेमचंद का जवाब नहीं। उनकी प्रत्येक रचना वातावरण प्रधान होती है। देशकाल का भी वे पूर्ण ध्यान रखते हैं।

भाषा–शैली

प्रेमचंद जी की रचनाओं में भाषा का विशेष योगदान रहता है। उनके पात्र भाषा का सहज और सरल प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा प्रवाहमयी होती है। उनकी भाषा आम बोलचाल की भाषा है जिसमें उर्दू–हिन्दी मिश्रित रहती है। अतः कह सकते हैं कि उनकी भाषा हिंदुस्तानी भाषा है। शब्दों का चयन भी वे अपनी भाषा में बड़ी ही चतुरता या आवश्यकतानुसार करते हैं। उनकी भाषा में कृत्रिमता बिल्कुल भी नहीं होती। उनकी भाषा में लोच और प्रवाह भरपूर होता है। उनकी रचना में मुहावरे और कहावतें भी आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाई जाती हैं जिससे उनकी भाषा और भी रोचक और सौंदर्यमयी बन जाती है।

प्रेमचंद की कहानियों में शैली के भी अनेक रूप होते हैं। उनकी शैली वर्णनात्मक, संकेतात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय और हास्य–व्यंग्य का पुट लिए होती है। शिल्प विधान की दृष्टि से भी उन्होंने आत्म चरित्रात्मक, ऐतिहासिक, नाटकीय, पत्रात्मक व डायरी–शैली आदि का प्रयोग अपनी रचनाओं में आवश्यकता को देखते हुए किया है। वैसे ऐतिहासिक शैली उनकी प्रिय शैली रही है। इस शैली की कहानियां खासी चर्चित रही हैं।

उद्देश्य

प्रेमचंद का पूरा साहित्य पूर्णरूपेण उद्देश्य पूर्ण है। उसमें मनोरंजन को उतनी ही जगह दी गई है जितनी कि आवश्यक है। अनावश्यक रूप से मनोरंजन तत्व का प्रयोग नहीं किया गया है। उनकी कहानियों का मूलाधार परिस्थितियों के मध्य मानवीय चरित्र की कमजोरियों को दिखलाकर उनका त्याग करना रहा है। इस दृष्टि से प्रेमचंद को आदर्शोन्मुखी तथा यथार्थवादी कथाकार मान सकते हैं। प्रेमचंद की रचनाएं वास्तविकता को उजागर करती प्रतीत होती हैं। वे समाज को बदलने में विश्वास रखते थे, इसलिए आदर्शवाद से अधिक उनका रुझान यथार्थवाद की तरफ ज्यादा अधिक था।

हिन्दी कथा–साहित्य में स्थान

प्रेमचंद का कथा–साहित्य इतना विशाल, सारगर्भित और उद्देश्यपूर्ण है कि उसमें पूरा एक काल समा गया है। वे कहानी–युग के पर्याय बन चुके थे। बांग्ला कहानी साहित्य में जो स्थान रवीन्द्रनाथ ठाकुर को प्राप्त है, वही स्थान हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद को भी सर्वसम्मति से मिला हुआ है। उनका हिन्दी कथा–साहित्य बेजोड़ है। तभी तो उनकी अनेकानेक कृतियों के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुके हैं, हो रहे हैं और आगे भी यूं ही होते रहेंगे। उनकी कहानी आधुनिक युग की कहानियों का दर्पण है। सारांश में प्रेमचंद की कहानियों में कहानी कला के सभी तत्व उपस्थित रहते हैं।

लोकप्रिय हिंदी आलोचक, निबंधकार, साहित्येतिहासकार, अनुवादक, कथाकार और कवि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना के सूत्रधार हैं। आपने इतिहास लेखन में रचनाकार के जीवन और पाठ को समान महत्व दिया है।

निबंध साहित्य में भी आचार्य शुक्ल का योगदान अहम है। भाव एवं मनोविकार संबंधी मनोविश्लेषणात्मक निबंध उनके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। अपने प्रतिनिधि निबंध मित्रता में आचार्य शुक्ल ने मित्र के स्वरूप, चयन, कर्तव्य सरीखे विविध पहलुओं पर मार्गदर्शनात्मक प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं– "हमें ऐसे मित्र की खोज में रहना चाहिए, जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो।... मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों। मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों।..."

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। इन्हें आधुनिक मीरा कहा जाता है। निराला ने इन्हें हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती भी कहा है।

महादेवी वर्मा उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के अंदर व्याप्त पीड़ाजनित हाहाकार–रुदन को न सिर्फ देखा–परखा वरन् करुण होकर अंधकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश भी की। उनका प्रासंगिक रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' इसी तरह की रचना है। इसमें उन्होंने नारी की व्यथा–कथा का मार्मिक चित्रण किया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र की विद्वता से हिंदी साहित्य–संसार का कोना–कोना परिचित है। आप संस्कृत के प्रकांड विद्वान एवं विविध देशों के भ्रमण से अर्जित सांस्कृतिक ज्ञानोनुभव से समृद्ध साहित्यकार हैं, जिसका विधायी प्रभाव आपके सृजन में दिखाई देता है। डॉ. मिश्र ने हिंदी साहित्य को ललित निबंध परंपरा से अवगत कराया। इनके निबंधों का संसार इतना व्यापक और बहुआयामी है कि प्रकृति, लोकतत्व, बौद्धिकता, सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता, काव्यात्मकता, रम्य रचनात्मकता, भाषा की उर्वर सृजनात्मकता एवं संप्रेषणीयता इनमें एक साथ अंतःग्रंथित मिलती है। पाठ्य निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', इनका ललित निबंध है, जो इनके ऐसे ही रचना–कौशल का परिचय देता है।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रहे उदयशंकर भट्ट ने कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक एवं एकांकी के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इनकी रचनाधर्मिता इन्हें बहुमुखी प्रतिभा के समर्थ साहित्यकार के रूप में स्थापित करती है। नाटक, गीतनाट्य एवं एकांकियों का इनका क्षेत्र व्यापक है। इनमें इन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मार्मिक रूप से किया है।

उदयशंकर भट्ट की आलोच्य एकांकी 'नए मेहमान' एक समस्या–प्रधान एकांकी है। महानगरों की बढ़ती जनसंख्या के कारण उत्पन्न आवासीय समस्या इस एकांकी का आधारभूत विषय है।

इस इकाई में हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता', महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट', डॉ. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' और उदयशंकर भट्ट कृत एकांकी 'नए मेहमान' का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से परिचित होते हुए उनके निबंध 'मित्रता' का समीक्षात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' के विविध पक्षों को समझ पाएंगे;

- डॉ. विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व–कृतित्व से अवगत होकर उनके ललित निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' का समीक्षात्मक आकलन कर पाएंगे;
- उदयशंकर भट्ट के संक्षिप्त जीवन वृत्त से परिचित होकर उनके एकांकी 'नए मेहमान' का समालोचनात्मक अवलोकन कर पाएंगे।

5.2 मित्रता (निबंध) : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

'मित्रता' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का लोकप्रिय वैचारिक निबंध है। इस निबंध में शुक्ल जी ने वैचारिक दृष्टि से मित्रता के जिन पक्षों पर मुख्य रूप से विचार किया है, वे हैं– मित्रता की क्यों आवश्यकता होती है, अच्छे मित्र के जीवन का हमारे ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है, कुसंग के क्या नुकसान हैं, जीवन का उद्देश्य क्या है, मित्र किसे बनाना चाहिए और व्यक्तित्व निर्माण में समाज की क्या भूमिका होती है। शुक्ल जी का विचार है कि हमें मित्र बहुत सोच–विचार कर बनाना चाहिए क्योंकि मित्रता का हमारे जीवन पर बहुत गहरा असर पड़ता है। मित्र ऐसा होना चाहिए जो हमारे सुख और दुख दोनों में भागीदार बने, हमें कुपथ पर जाने से रोके तथा निराशा के क्षणों में उत्साहित करे और संकट में सहारा दे।

5.2.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : एक परिचय

आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना गांव में हुआ था। बाल्यकाल में ही शुक्ल जी ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। जब वे इंटरमीडिएट कर रहे थे तब उन्होंने अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। इसी दौरान आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियां जागीं। छब्बीस वर्ष की आयु में 'हिन्दी शब्दसागर' के सहकारी संपादक नियुक्त हुए तथा नौ वर्षों तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संपादक भी रहे।

आचार्य शुक्ल हिंदू विश्वविद्यालय, काशी में हिंदी विभाग के अध्यापक नियुक्त हुए तथा बाद में विभागाध्यक्ष भी बना दिए गए। सन् 1937 तक आप हिंदू विश्वविद्यालय में रहे। तत्पश्चात अवकाश ग्रहण कर साहित्यिक सेवा में जीवन समर्पित कर दिया। सन् 1940 में छप्पन वर्ष की आयु में शुक्ल जी का देहावसान हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबंधकार, इतिहासकार, कवि, कोषकार एवं अनुवादक भी थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में आचार्यवत् योगदान किया। इनकी रचनाओं में पांडित्य, गंभीरता और मननशीलता के दर्शन होते हैं। शुक्ल जी ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। जैसे– सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी पर निबंधात्मक आलोचनाएं अत्यंत सतर्क एवं मनोवैज्ञानिक हैं। बुद्ध चरित, हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि भाग–एक, दो आदि शुक्ल जी की मुख्य कृतियां हैं जो साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान रखती हैं।

शुक्ल जी ने समीक्षा के जो मानदंड निर्धारित किये हैं वे आज भी प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी रहेंगे। आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व में उनका अध्यापकीय रूप झलकता है। उन्हें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। वे बहुपठ थे तथा जीवन, प्रकृति एवं साहित्य के उपासक थे। मानवतावादी शुक्ल जी की लोकमंगल की

भावना उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। वे कवि हृदय होने के कारण अत्यंत भावुक व्यक्ति थे। देश प्रेम एवं प्रकृति प्रेम उनमें कूट–कूट कर भरा था। वे समन्यवादी दृष्टिकोण रखते थे। विवेकशील, तर्कशील होने के साथ वे स्वच्छंद चिंतन परक मनुष्य थे। लोक कल्याण, लोकमंगल के लिए ही उनका संपूर्ण लेखन समर्पित था।

5.2.2 मित्रता : मूल पाठ

कोई युवा पुरुष जब अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकान्त और निराली नहीं रहती तो उसकी जान–पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल–मेल हो जाता है। यही हेल–मेल बढ़ते–बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है, क्योंकि संगति का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं, जब हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं जिससे जो जिस रूप में चाहे, उस रूप का निर्माण करे–चाहे वह राक्षस बनावे, चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के हैं, क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं, क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहता है, और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा पुरुषों को प्रायः विवेक से कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाये तो यह भय नहीं रहता, पर युवा पुरुष प्रायः विवेक से कम काम लेते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण–दोषों को कितना परख लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसन्धान नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी ही अच्छी मानकर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हंसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग, थोड़ी चतुराई या साहस– ये ही दो चार बातें किसी में देखकर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं। हम लोग नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है, तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमें नहीं सूझती कि यह ऐसा साधन है जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान का वचन है– 'विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे वैसा मित्र मिल जाये उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।' विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पों में हमें दृढ़ करेंगे, दोष और त्रुटियों से हमें बचायेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साहित होंगे तब हमें उत्साहित करेंगे। सारांश यह है कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की–सी निपुणता और परख होती है, अच्छी से अच्छी माता का–सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न पुरुष को करना चाहिए।

छात्रावास में तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ पड़ती है। पीछे के जो स्नेह–बन्धन होते हैं, उसमें न तो उतनी उमंग रहती है, न उतनी खिन्नता। बाल–मैत्री में जो मनन करने वाला आनन्द होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या होती है, वह और कहां? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है। हृदय के कैसे–कैसे उद्‌गार निकलते हैं। वर्तमान कैसा आनन्दमय दिखायी पड़ता है और भविष्य के सम्बन्ध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएं मन में रहती हैं। कितनी जल्दी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना–मनाना होता है! 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय के कितने भारी उथल–पुथल का भाव भरा हुआ है! किन्तु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शान्त और गम्भीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं।

मैं समझता हूं कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटों में चलता नहीं। सुन्दर प्रतिमा, मनभावनी चाल और स्वच्छन्द प्रकृति ये ही दो–चार बातें देखकर मित्रता की जाती है। पर जीवन–संग्राम में साथ देने वाले मित्रों में इनसे कुछ अधिक बातें चाहिए। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें। जिससे अपने छोटे–मोटे काम तो हम निकालते जायें, पर भीतर–ही–भीतर घृणा करते रहें? मित्र सच्चे पथ–प्रदर्शक के समान होना चाहिए, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, भाई के समान होना चाहिए, जिसे हम अपना प्रीति–पात्र बना सकें।

हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए– ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि–लाभ को दूसरा अपना हानि–लाभ समझे। मित्रता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक ही प्रकार का कार्य करते हों या एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक या वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शान्त प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावों में कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता खूब निभी। यह कोई भी बात नहीं है कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगों में ही मित्रता हो सकती है।

समाज में विभिन्नता देखकर लोग एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, जो गुण हममें नहीं है हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले, जिसमें वे गुण हों। चिन्ताशील मनुष्य प्रफुल्लित चित्त का साथ ढूंढता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकांक्षावाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिए चाणक्य का मुंह ताकता था। नीति–विशारद अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

मित्र का कर्तव्य इस प्रकार बताया गया है– 'उच्च और महान कार्य में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर का काम कर जाओ।' यह कर्तव्य उससे पूरा होगा जो दृढ़–चित्त और सत्य–संकल्प का हो। इससे हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए, जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो।

हमें उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों। मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिससे हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें, और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा।

जो बात ऊपर मित्रों के सम्बन्ध में कही गयी है, वही जान–पहचान वालों के सम्बन्ध में भी ठीक है। जान–पहचान के लोग ऐसे हों जिनसे हम कुछ लाभ उठा सकते हों, जो हमारे जीवन को उत्तम और आनन्दमय करने में कुछ सहायता दे सकते हों, यद्यपि उतनी नहीं जितनी गहरे मित्र दे सकते हैं। मनुष्य का जीवन थोड़ा है, उसमें खोने के लिए समय नहीं। यदि क, ख, और ग हमारे लिए कुछ नहीं कर सकते हैं, न कोई बुद्धिमानी या विनोद की बातचीत कर सकते हैं, न कोई अच्छी बात बतला सकते हैं, न सहानुभूति द्वारा हमें ढाढ़स बंधा सकते हैं, न हमारे आनन्द में सम्मिलित हो सकते हैं, न हमें कर्तव्य का ध्यान दिला सकते हैं, तो ईश्वर हमें उनसे दूर ही रखें। हमें अपने चारों ओर जड़ मूर्तियां सजाना नहीं है। आजकल जान–पहचान बढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषों को पा सकता है, जो उसके साथ थियेटर देखने जायेंगे, नाच रंग में आयेंगे, सैर–सपाटे में जायेंगे, भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करेंगे। यदि ऐसे जान पहचान के लोगों से कुछ हानि न होगी तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बड़ी भारी होगी। सोचो तो तुम्हारा जीवन कितना नष्ट होगा।

यदि ये जान–पहचान के लोग उन मनचले युवकों में से निकले जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश आजकल बहुत बढ़ रही है, यदि उन शोहदों में से निकले, जो अमीरों की बुराइयों और मूर्खताओं की नकल किया करते हैं, गलियों में ठठ्टा मारते हैं और सिगरेट का धुआं उड़ाते चलते हैं, ऐसे नवयुवकों से बढ़कर शून्य, निस्सार और शोचनीय जीवन और किसका है? वे अच्छी बातों के सच्चे आनन्द से कोसों दूर हैं। उनके लिए न तो संसार में सुन्दर और मनोहर उक्ति वाले कवि हुए हैं और न संसार में सुन्दर आचरण वाले महात्मा हुए हैं। उनके लिए न तो बड़े–बड़े वीर अद्‌भुत कर्म कर गये हैं और न बड़े–बड़े ग्रन्थकार ऐसे विचार छोड़ गये हैं, जिनसे मनुष्य जाति के हृदय में सात्विकता की उमंगें उठती हैं। उनके लिए फूल–पत्तियों में कोई सौन्दर्य नहीं। झरनों के कल–कल में मधुर संगीत नहीं, अनन्त सागर तरंगों में गम्भीर रहस्यों का आभास नहीं, उनके भाग्य में सच्चे प्रयत्न और पुरुषार्थ का आनन्द नहीं, उनके भाग्य में सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शान्ति नहीं।

जिनकी आत्मा अपने इन्द्रिय–विषयों में ही लिप्त है, जिनका हृदय नीचाशयों और कुत्सित विचारों से कलुषित है, ऐसे नाशोन्मुख प्राणियों को दिन–दिन अन्धकार में पतित होते देख कौन ऐसा होगा जो तरस न खायेगा? उसे ऐसे प्राणियों का साथ न करना चाहिए।

मेल के दस–पांच साथियों को लेकर विषय वासना में लिप्त रहा करता था। एक बीमारी का बहाना करके इसी प्रकार वह अपने दिन काट रहा था। इसी बीच उसका पिता उससे मिलने के लिए गया और उसने एक हंसमुख जवान को कोठरी से बाहर निकलते देखा। जब पिता कोठरी के भीतर पहुंचा तब डेमेट्रियस ने कहा– 'ज्वर ने मुझे अभी छोड़ा है।' पिता ने कहा– 'हां! ठीक है वह दरवाजे पर मुझे मिला था।'

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्वृत्ति का ही नाश नहीं करता, बल्कि बुद्धि का भी क्षय करता है। किसी युवा–पुरुष की संगति यदि बुरी होगी तो वह उसके पैरों में बंधी चक्की के समान होगी जो उसे दिन–दिन अवनति के गड्ढे में गिराती जायेगी और यदि अच्छी होगी तो सहारा देने वाली बाहु के समान होगी जो उसे निरन्तर उन्नति की ओर उठाती जायेगी।

इंग्लैण्ड के एक विद्वान को युवावस्था में राज–दरबारियों में जगह नहीं मिली। इस पर जिन्दगी भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा। बहुत से लोग तो इसे अपना बड़ा भारी दुर्भाग्य समझते, पर वह अच्छी तरह जानता था कि वहां वह बुरे लोगों की संगति में पड़ता जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होते। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनके घड़ी भर के साथ से भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, क्योंकि उतने ही बीच में ऐसी–ऐसी बातें कही जाती हैं जो कानों में न पड़नी चाहिए, चित्त पर ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है। बुराई अटल भाव धारण करके बैठती है। बुरी बातें हमारी धारणा में बहुत दिनों तक टिकती हैं। इस बात को प्रायः सभी लोग जानते हैं कि भद्दे व फूहड़ गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढ़ते हैं, उतनी जल्दी कोई गम्भीर या अच्छी बात नहीं। एक बार एक मित्र ने मुझसे कहा कि उसने लड़कपन में कहीं से एक बुरी कहावत सुन पायी थी, जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता है कि न आये, पर बार–बार आता है। जिन भावनाओं को हम दूर रखना चाहते हैं, जिन बातों को हम याद नहीं करना चाहते वे बार–बार हृदय में उठती हैं और बेधती हैं। अतः तुम पूरी चौकसी रखो, ऐसे लोगों को कभी साथी न बनाओ जो अश्लील, अपवित्र और फूहड़ बातों से तुम्हें हंसाना चाहे। सावधान रहो ऐसा न हो कि पहले–पहले तुम इसे एक बहुत सामान्य बात समझो और सोचो कि एक बार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा। अथवा तुम्हारे चरित्र–बल का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि ऐसी बातें बकने वाले आगे चलकर आप सुधर जायेंगे। नहीं, ऐसा नहीं होगा। जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहां और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे–धीरे उन बुरी बातों में अभ्यस्त होते–होते तुम्हारी घृणा कम हो जायेगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी, क्योंकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की बात ही क्या है! तुम्हारा विवेक कुण्ठित हो जायेगा और तुम्हें भले–बुरे की पहचान न रह जायेगी। अन्त में होते–होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे, अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। यही पुरानी कहावत है कि–

'काजर की कोठरी में कैसो हूं सयानो जाय,
एक लीक काजर की, लागिहैं, पै लागिहैं।'

5.2.3 मित्रता : निबंध सार

'मित्रता' निबंध तीन पहलुओं पर केन्द्रित है– पहला है, मित्रता। दूसरा है, जान–पहचान और तीसरा है समाज। शुक्ल जी ने इन्हीं तीन बिंदुओं का व्यावहारिक विश्लेषण किया है। मित्र कैसे बनता है? कोई युवा समाज में प्रवेश करता है तो उसकी जान–पहचान बढ़ती जाती है। इन्हीं जान–पहचान वालों में से कुछ के साथ उसका मेल–जोल हो जाता है।

यह मेल–जोल ही आगे चलकर मित्रता में बदल जाता है। मित्रों का चयन सोच–समझकर करना चाहिए क्योंकि संगति का प्रभाव बिना जाने हुए ही हम पर पड़ता है। युवावस्था में प्रायः बुद्धि अपरिपक्व होती है और मन कोमल होता है। हमारे भाव भी अपरिमार्जित होते हैं। इस समय संगति का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ता है। बुरी संगति से पतन और अच्छी संगति से उन्नयन होता होगा। किन लोगों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए? इस संबंध में शुक्ल जी मानते हैं कि ऐसे व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं करना चाहिए जो अधिक दृढ़ संकल्पी हो क्योंकि तब उनकी बात चाहे अच्छी हो या बुरी माननी ही पड़ती है। ऐसे लोगों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए जो हमारी हर बात को ऊपर रखते हैं। असल में मित्र उसे बनाना चाहिए जिसका विवेक जाग्रत हो। हमें सावधानीपूर्वक मित्रों का चयन करना चाहिए।

"हंसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग और थोड़ी–सी चतुराई और साहस" आदि देखकर हम किसी को मित्र बना लेते हैं, यह गलत है। शुक्ल जी ने एक विद्वान का उद्धरण देकर यह बताया है कि मित्र विश्वासपात्र होना चाहिए। वह हमारे जीवन में औषधि के समान होना चाहिए। हमें मित्रों से यह आशा करनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्प में हमारे चित्रवृत्ति को दृढ़ करेंगे। दोषों और त्रुटियों से बचाएंगे और मर्यादा से प्रेम को पुष्ट करेंगे। छात्रावस्था में मित्रता की धुन सवार रहती है। इस मित्रता में सभी भाव अर्थात आनंद, ईर्ष्या, खिन्नता, मधुरता, अनुरक्ति और प्रेम समाए रहते हैं। युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता की अपेक्षा दृढ़, शांत और गंभीर होती है। मित्र वह है जो जीवन संग्राम में हमारे साथ है। मित्र सच्चा पथ–प्रदर्शक, भाई के समान स्नेह देने वाला, सहानुभूतिपूर्ण और स्वार्थहीन होना चाहिए तथा जो हमारे हानि–लाभ और सुख–दुःख का समान सहभागी हो।

ऐसा भी होता है कि भिन्न–भिन्न प्रकृति वालों में प्रगाढ़ मैत्री संबंध स्थापित होते हैं। एक शांत और दूसरा उग्र। इसलिए यह कहना सही नहीं है कि मित्रता के लिए समान स्वभाव और समान रुचि का होना जरूरी है। मित्र का कर्तव्य है कि–

1. वह उच्च और महान कार्य में इस प्रकार सहयोग दे कि उसके मित्र का मान बढ़े और वह साहस प्राप्त कर सके;
2. मित्र प्रतिष्ठित हो;
3. शुद्ध हृदय हो;
4. मृदुल और पुरुषार्थी हो;
5. सत्यनिष्ठ और शिष्ट हो;
6. विश्वास पात्र हो।

विश्व के अनेक महान पुरुषों ने अपने अच्छे मित्रों की बदौलत महान कार्य किए हैं। मित्रों ने कई लोगों को कुमार्ग से बचाया है और सात्विकता प्रदान की है। अपने साथियों के विवेक को जाग्रत किया है। वह ऐसा दृढ़ आशय और उद्देश्य प्रदान करता है कि उसका साथी कर्मक्षेत्र में श्रेष्ठ बन जाता है। मित्रता अच्छे और बुरे दोनों समय के लिए उपयोगी है। जीवन और मरण में मित्रता अनुपम रूप से सहायक होती है।

जीवन प्रहसन नहीं है। वह एक गंभीर चीज है। जीवन कर्तव्यों का पालन करने के लिए है, समय गंवाने के लिए नहीं। हमारे कर्म भी महान हों और विचार भी महान हों। जिससे हम मिलते–जुलते हैं, उनके आचरण और बुद्धि की परख कर ही हमें उनके साथ रहना चाहिए। जान–पहचान वालों का बुरा असर हम पर सहजता से पड़ता है। हमें जो गुण परमात्मा ने दिए हैं उनमें कई गुना वृद्धि करके हमें दूसरों को देना चाहिए। डिमास्थनीज का कथन है कि यदि अपने महान पूर्व पुरुषों की भांति हमें कर्म करने का अवसर प्राप्त न भी हो तो भी उनके विचारों को अवश्य ग्रहण करना चाहिए। हम अपनी संगति से ही जाने जाते हैं। बेकर का कहना है कि समूह का नाम संगति नहीं है।

शुक्ल जी की मान्यता है कि संगति में हमें अपने को उन्नत बनाने का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यदि हमारी पहचान वाले अच्छा कार्य नहीं कर सकते हैं, न वे हमारे आनंद में सम्मिलित हो सकते हैं, न धैर्य बंधा सकते हैं, न कर्तव्य की प्रेरणा दे सकते हैं तो फिर जान–पहचान व्यर्थ है। ऐसे लोगों की जान–पहचान घातक है। ऐसे लोगों के संग से भारी हानि होने की संभावना बनी रहती है। ऐसे संगति में हम शोहदे और चरित्रहीन ही बन सकते हैं। अतएव ऐसी जान–पहचान से दूर रहना चाहिए। ऐसे चरित्रहीन और ढोंगी लोगों की कमी नहीं है, जिन्हें न महान ग्रंथ पढ़ने में आनंद आता है और न प्रकृति के बीच उसकी रंग–बिरंगी छवि में ही रस आता है। ऐसे लोगों ने प्रीति की सुख ही नहीं जाना।

शुक्ल जी का महत्वपूर्ण कथन है कि "कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है।" कुसंग में पड़कर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, आध्यात्मिक विकास रुक जाता है। चिंता की पवित्रता नष्ट हो जाती है और बुराइयां दृढ़ होकर मन में बैठ जाती है। पतन का रास्ता सरल है। उस रास्ते पर एक बार चले तो फिर उससे अलग हटना मुश्किल है। इसलिए ऐसे साथी मत बनाओ जो फूहड़ और स्वार्थी हों। ऐसे साथ से विवेक कुंठित हो जाता है और बुराइयां चारों ओर से घेर लेती हैं। इसीलिए कहा गया है कि काजल की कोठरी में जाओगे तो काजल की एक न एक रेखा तुम पर अवश्य ही दर्ज हो जाएगी।

समाज भी व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति को अच्छा समाज मिले तो वह आत्म संस्कार में सहायक होता है। शुक्ल जी ने एक और प्रश्न उठाया है कि ग्रामीण लोग शहर में आते हैं तो वहां उन्हें भिन्न प्रकार का समाज मिलता है। यह समाज उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होता। इस स्थिति में उन्हें साहित्यिक समाज में प्रवेश करना चाहिए पर, यहां भी उन लोगों को वह सब जानकारी नहीं मिलती जिनकी उन्हें स्वशिक्षा के लिए आवश्यकता है। अतः उन्हें समाज में व्यवहार करते हुए काफी सतर्क रहना चाहिए। हमारा सामाजिक आचरण ही हमारा यथार्थ मूल्य उद्घाटित करता है। हम समाज में प्रवेश कर वह जान पाते हैं कि हम कितने छोटे अथवा कितने बड़े हैं। समाज के अलग–अलग लोगों में अलग–अलग गुण होते हैं। हम समाज से ये गुण ग्रहण करते हैं। हम समाज से क्षमा, नम्रता और उदारता के गुण प्राप्त करते हैं। समाज के कार्य करते रहने से हमारी समझ और विवेक–बुद्धि बढ़ती है। हमारा दायरा बढ़ने से हमारी धारणाएं विस्तृत होती हैं। समाज में हम स्वार्थ–त्याग सीखते हैं। समाज हमें व्यवहार की शिक्षा देता है– जैसे बड़ों के प्रति सरलता का व्यवहार, बराबर वालों के प्रति प्रसन्नता का व्यवहार तथा छोटों के प्रति कोमलता का व्यवहार। मीठे वचन और उत्तम चाल–चलन की पाठशाला समाज ही है। समाज में फूहड़ लोग भी रहते हैं। ऐसे लोगों से बचना और दूर रहना जरूरी है।

5.2.4 मित्रता : समीक्षात्मक अवलोकन

आचार्य शुक्ल ने कुछ मनोवेज्ञानिक तथ्यों को स्पर्श करते वैचारिक निबंध लिखे हैं जो मानव–मन के मनोविकारों और भावों से संबंधित हैं। इन निबंधों में 'मित्रता' निबंध को भी रखा जा सकता है। इनमें भावों को आधार बनाया है। ये निबंध सर्वथा मौलिक है। जितनी परिपक्वता और प्रौढ़ता के साथ आचार्य शुक्ल ने इन्हें लिखा है, उतने अधिकार और प्रौढ़ता के साथ परवर्ती अन्य साहित्यकारों ने इन विषयों पर नहीं लिखा है। समीक्षात्मक अवलोकन के अंतर्गत यहां हम निबंध की अंतर्वस्तु, लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव, भाषा और शैली की विशेषताएं तथा प्रतिपाद्य का अध्ययन करेंगे।

(क) अंतर्वस्तु

'मित्रता' निबंध से आप अवगत हो चुके हैं। निबंध में रचनाकार अपने विचारों और भावों को व्यक्त करता है इसलिए निबंध की अंतर्वस्तु उसमें व्यक्त भावों और विचारों से बनती है। शुक्ल जी के निबंध विचार प्रधान हैं। यह निबंध भी विचार प्रधान है लेकिन इसमें शुक्ल जी की भावनाएं प्रबल रूप से व्यक्त हुई हैं।

(i) विचार पक्ष

शुक्ल जी का 'मित्रता' निबंध मित्रता नामक भाव के संबंध में है। शुक्ल जी ने वैचारिक दृष्टि से विश्लेषण किया है कि मित्रता भी एक भाव है। युवावस्था में कैसे मित्र बनाएं और कैसे लोगों की संगति करें; यह स्पष्ट करना इस इस निबंध का हेतु है। शुक्ल जी ने निबंध के आरंभ में इस बात पर विचार किया है कि मित्र कैसे बनते हैं। उनके अनुसार, "जब हम घर से बाहर निकलते हैं और समाज में प्रवेश करते हैं तो हम तरह–तरह के लोगों के संपर्क में आते हैं। हमारी जान–पहचान का दायरा बढ़ता है। इन्हीं लोगों में से कुछ को हम मित्र चुनते हैं। शुक्ल जी कहते हैं कि जब हम समाज में प्रवेश करते हैं तब हमारी उम्र ऐसी नहीं होती कि हर चीज पर गहराई से सोच–समझकर निर्णय ले सकें। उस समय "हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है, अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हम को नहीं रहता।"

शुक्ल जी के उपरोक्त कथन का आशय यही है कि उस समय हमारे अंदर ग्रहणशीलता अधिक होती है, हम जल्दी दूसरों से प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए ऐसे समय अगर हम ऐसे व्यक्ति से मित्रता कर लेते हैं जो हमसे अधिक संकल्प वाला है तो हम उससे प्रभावित होकर उसका अनुकरण करने लगेंगे। लेकिन अगर हम ऐसे व्यक्ति से मित्रता करते हैं जो हमें जीवन पथ पर लगातार सावधान करता है, हमें साहस बंधाता है और हमारी मदद करता है तो वह हमारा विश्वासपात्र होता है लेकिन वह हमें अंधेरे में नहीं रखता। हमें धोखा नहीं देता, हमें भुलावे में नहीं रखता। इस तरह एक अच्छा मित्र पथप्रदर्शक की तरह होता है।

(ii) भाव पक्ष

मित्रता एक भाव है, लेकिन शुक्ल जी ने इसका विवेचन बौद्धिक दृष्टि से किया है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि शुक्ल जी के इस निबंध में हृदय पक्ष की उपेक्षा हुई है। यह अवश्य

है कि मित्रता के हृदय पक्ष को शुक्ल जी ने कम ही छुआ है और उनकी रुचि इसके विचार पक्ष के विवेचन की ओर ही अधिक रही है। फिर भी, इस निबंध में बराबर उनकी भावनाएं भी उभरकर सामने आती रहती है। उदाहरणार्थ– निबंध के प्रारंभ में ही छात्रावस्था में की जाने वाली मित्रता का वर्णन करते हुए उन्होंने, उस उम्र में मित्रता के प्रति जो भावावेग होता है, उसका वर्णन भी वैसी ही भावमय शब्दावली में किया है–

"बाल मैत्री में जो मग्न करने वाला आनंद होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहां? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है। हृदय में कैसे–कैसे उद्‌गार निकलते हैं। वर्तमान कैसा आनंदमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के संबंध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएं मन में रहती है। कैसी क्षोभ में भरी बातें होती है और कैसी आवेगपूर्ण लिखा–पढ़ी होती हैं। कितनी जल्दी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना–मनाना होता है।"

इस तरह शुक्ल जी ने अच्छे मित्र पर विचार करते हुए उसे केवल बौद्धिक विवेचन का विषय ही नहीं रहने दिया है। मित्रों का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है और वे एक दूसरे के जीवन में क्या भूमिका निभाते हैं इसका विवेचन करते हुए एक जगह वे उसे नाटकीय रूप दे देते हैं। वहां सीधे वर्णन या विवेचन की बजाय शुक्ल जी उसे एक मित्र के संवाद के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिससे मित्रता का भाव पक्ष भी हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है–

"हमें अपने मित्र से कहना चाहिए– 'मित्र! अपना हाथ बढ़ाओ। यह जीवन और मरण में हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी। पर यह नहीं कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे, तुम्हारा भी उपकार होगा, जो कुछ तुम करोगे उससे तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील न्यायी और पराक्रमी बने रहो, क्योंकि यदि तुम चूकोगे तो मैं भी चूकूंगा। जहां–तहां तुम जाओगे, मैं भी जाऊंगा। तुम्हारी बढ़ती होगी तो मेरी भी बढ़ती होगी। जीवन के संग्राम में वीरता के साथ लड़ो क्योंकि तुम्हारी ढाल मैं लिए हूं।'"

इस प्रकार के अंश निबंध को नीरस होने से बचाते हैं। शुक्ल जी की भाषा शुष्क विश्लेषणात्मक नहीं है बल्कि उसमें साहित्यिक भाषा का रस मिलता है, जो उनके निबंध के भाव पक्ष को ही उजागर करता है।

(ख) निबंधकार के व्यक्तित्व का प्रभाव

निबंध रचना पर निबंधकार के व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य रहता है। उसका दृष्टिकोण, उसकी अभिरुचि, उसका शैलीगत वैशिष्ट्य और उसकी भाषा की निजता– इन सभी रूपों में उसका व्यक्तित्व निबंध में अभिव्यक्त होता है। यह अवश्य है कि निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव सभी के यहां एक सा नहीं होता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की लेखन पद्धति वस्तुनिष्ठ है। उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को आसानी से पहचाना जा सकता है। 'मित्रता' शुक्ल जी का आरंभिक निबंध है लेकिन उनका दृष्टिकोण इसमें भी पहचाना जा सकता है। शुक्ल जी की दृष्टि समाजोन्मुख थी। यह निबंध भी उन्होंने इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर लिखा है। वे प्रत्येक वस्तु, भाव और विचार पर समाज की भलाई की दृष्टि से विचार करते हैं। मित्रता पर भी उन्होंने इसी दृष्टि से विचार किया है।

मित्रता यद्यपि भाव है और इस दृष्टि से इस पर मनोवैज्ञानिक या भावनापरक दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

शुक्ल जी ने 'मित्रता' निबंध में मित्रता पर विचार करते हुए उसके सामाजिक पक्ष को प्रमुखता दी है। मित्रता की क्यों आवश्यकता होती है? मित्रता किससे करनी चाहिए? किसकी संगति का असर अच्छा और किसका बुरा होता है? एक अच्छे मित्र में क्या गुण होने चाहिए? इन सभी बातों पर उन्होंने सामाजिक दृष्टि से ही विचार किया है। अपना यह दृष्टिकोण उन्होंने निबंध के अंत में स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं–

"समाज में प्रवेश करने से हमें अपना यथार्थ मूल्य विदित होता है। हम देखते हैं कि हम उतने चतुर नहीं हैं जितने एक कोने में बैठकर कोई पुस्तक आदि हाथ में लेकर अपने को समझा करते थे। अलग–अलग लोगों में अलग–अलग तरह के गुण होते हैं। यदि कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा दूसरी में। समाज में प्रवेश करके हम देखते हैं कि इस बात की कितनी आवश्यकता है कि लोग तुम्हारी भूलों को क्षमा करें, अतः हम दूसरों की भूल–चूक को क्षमा करना सीखते हैं। हम कई ठोकरें खाकर नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं।"

शुक्ल जी के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है, बौद्धिकता। निबंध लिखते हुए वे अपनी भावनाओं को बुद्धि पर हावी नहीं होने देते। इसी कारण वे 'मित्रता' जैसे भाव का विश्लेषण भी वस्तुपरक ढंग से करते हैं। किसी भी विषय पर विचार करते हुए उनकी दृष्टि उसके सभी पक्षों पर रहती है और उन पक्षों में जो तार्किक एकता होती है, उसे वे तत्काल पहचान लेते हैं। यही वजह है कि उनके विचारों में कहीं बिखराव या अंतर्विरोध दिखायी नहीं देता बल्कि अपने मत को वे इतने ठोस और विवेकपूर्ण ढंग से रखते हैं कि उनके विचारों का लोहा मानना पड़ता है। शुक्ल जी ने इस निबंध में मित्रता से संबंधित सभी पक्षों का विवेचन किया है।

शुक्ल जी के व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है, उनकी भावुकता। शुक्ल जी सिर्फ बुद्धिवादी लेखक ही नहीं थे बल्कि उनके पास एक सर्जनशील और भावुक हृदय भी था। मित्रता का बौद्धिक विश्लेषण करते हुए भी शुक्ल जी विषय के वर्णन में अपने इस भावुक हृदय और रचनात्मकता का परिचय बार–बार देते हैं। इस निबंध में कई स्थानों पर उनकी भाषा की इस रचनात्मकता को पहचाना जा सकता है।

(ग) संरचना शिल्प

निबंध की संरचना के दो पक्ष होते हैं– भाषा और शैली। निबंध में भाषा और शैली के लिए बहुत स्वतंत्रता नहीं होती। रचनाकार को अपनी विशिष्टता और भाषा के सौंदर्य का प्रदर्शन करने हेतु अधिक रचनात्मक ऊर्जा और कल्पनाशीलता की आवश्यकता होती है।

(i) भाषा

शुक्ल जी का भाषा पर जबर्दस्त अधिकार था। जटिल से जटिल विषय का अत्यंत सारगर्भित भाषा में विवेचन कर देना उनके लिए बहुत आसान था। निबंधों में विवेचन की सहजता और स्वाभाविकता उनके भाषा पर अधिकार के कारण ही है। इस निबंध में जब वे मित्रता के

किसी जटिल पक्ष का विवेचन करते हैं, तब भी उनकी भाषा सहज और सरल बनी रहती है। वाक्यों का प्रवाह ऐसा होता है कि एक के बाद एक दूसरा विचार अपने आप निकलता प्रतीत होता है। सभी वाक्य तर्क के अंतःसूत्र से बंधे होते हैं और उनमें कहीं टकराव या बिखराव नहीं होता। उदाहरणार्थ–

हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरंभ करते हैं जबकि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता को नहीं रहता।

उपरोक्त अंश में शुक्ल जी ने किशोर वय की जटिल मनोदशा का विवेचन किया है। इस उद्धरण में 'अपरिमार्जित' भाव, 'अपरिपक्व' प्रवृत्ति, 'कोमल' चित्त, 'मनोवेगों की शाक्ति', 'प्रकृति की कोमलता' आदि के माध्यम से शुक्ल जी ने एक ही वाक्य में किशोर की स्वाभावगत विशिष्टता को चित्रित कर दिया है।

शुक्ल जी की भाषा में खड़ी बोली का सौंदर्य व्यक्त हुआ है। उनकी प्रवृति तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर अधिक है और इस कारण उनकी भाषा को संस्कृतनिष्ठ कहा जा सकता है। किंतु इसके कारण उनकी भाषा कृत्रिम, शुष्क और बोझिल नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि शुक्ल जी का आग्रह सहज और स्वाभाविक भाषा लिखने की ओर है और इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर वे तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसीलिए उनके इस निबंध में अपरिमार्जित, अपरिपक्व, मनोवेग, अनुसंधान, आत्मशिक्षा, हतोत्साह, अनुरक्ति, आर्द्रता, मृदुल, पुरुषार्थी, सात्विकता, क्षय, सद्वृत्ति, सांस्काराभिलाषी, मनोनीत जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग तो मिलता ही है, हेलमेल, धड़ाधड़, चटपट, ठट्ठा जैसे देशज शब्द और दरवाजा, दिल्लगी, पानदान, हुक्के, सवार, कामई, शोहदे, मेहफिल, अमीर, नकल, बीमार जैसे उर्दू शब्द भी सहज ही आ जाते हैं।

(ii) शैली

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ज़ी जब किसी विषय पर विचार करते हैं तो उनकी दृष्टि उसके सभी पक्षों पर तार्किक और वस्तुपरक ढंग से विचार करने की होती है। 'मित्रता' निबंध पर विचार करें तो हमारे सामने उनकी यह विशिष्टता स्पष्ट हो जाएगी। उनकी विवेचनपरक शैली अत्यंत प्रभावशाली है। इस दृष्टि से निबंध के आरंभिक अंश का विश्लेषण करें तो हम इस प्रक्रिया को समझ सकते हैं। निबंध के प्रारंभ में उन्होंने घर की चारदीवारी से बाहर निकलने के पश्चात किसी युवक के समक्ष उत्पन्न नवीन स्थिति का वर्णन किया है। इसी क्रम में वे बताते हैं कि मित्र कैसे बनते हैं? इस तरह वे अपने निबंध की मुख्य समस्या को स्पष्ट शब्दों में हमारे समक्ष रख देते हैं–

"जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान–पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं, और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेलमेल हो जाता है। यही हेलमेल बढ़ते–बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन

की सफलता निर्भर हो जाती है, क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है।"

इस तरह, वे आरंभ में समस्या को रखते हैं। इसके बाद वे समस्या के एक–एक पक्ष का विवेचन करते जाते हैं।

(घ) प्रतिपाद्य

शुक्ल जी की दृष्टि समाज–सापेक्ष थी। 'मित्रता' निबंध पर भी उन्होंने इसी समाज–सापेक्ष दृष्टि से विचार किया है। मित्रता या दोस्ती एक प्रकार का भाव है जो दो या दो से ज्यादा लोगों के मध्य उनके पारस्परिक संबंधों से उत्पन्न होता है। चूंकि ये संबंध सामाजिक हेलमेल से बनते हैं इसलिए इनका असर व्यक्ति के सोच और कार्य, दोनों पर जरूर पड़ता है। व्यक्ति के सोच और कार्य का प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है और इससे समाज की स्थिति भी प्रभावित होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम किसी से जान–पहचान बढ़ाने से पहले अच्छी तरह से विचार कर लें।

किसी व्यक्ति को मित्र बनाने से पहले यह सोच लें कि यह मित्रता मेरे व्यक्तित्व का विकास करेगी, संकट के समय मेरे लिए सहायक होगी या सिर्फ मेरे लिए बोझ बनकर रह जाएगी।

शुक्ल जी ने मित्रता की परीक्षा का आधार ऐसे जीवन–मूल्यों को बनाया है जो सामाजिक दृष्टि से उत्तरदायित्वपूर्ण हों। व्यक्ति सिर्फ स्वार्थ और विलासिता में ही न डूबा रहे बल्कि अपने आपकी उन्नति और सामाजिक हित के कार्यों में लगाये। शुक्ल जी के ऐसे विचारों का कारण उस समय की सामाजिक स्थितियां हैं। वे जिस समय लिख रहे थे उस समय देश में स्वतंत्रता का संघर्ष चल रहा था। इसलिए ऐसे विचारों और मूल्यों को प्रसारित करना आवश्यक था कि जिससे लोगों में राष्ट्रीय हित की भावना उत्पन्न हो। शुक्ल जी का यह निबंध इस दृष्टि से विशिष्ट है।

5.3 प्रथम भेंट – अंतिम भेंट (रेखाचित्र) : महादेवी वर्मा

साहित्य जगत में महादेवी वर्मा का आविर्भाव तब हुआ जब खड़ी बोली परिष्कृत हो रही थी। हिन्दी काव्य को उन्होंने ब्रजभाषा की कोमलता प्रदान की और छंदों के अभिनव दौर को गीतों का भंडार सौंपने के साथ ही भारतीय दर्शन को वेदना की हार्दिक स्वीकृति दी। गद्य साहित्य में भी उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। उनके लेख, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, भूमिकाओं और ललित निबंधों में गद्य का उत्कृष्ठतम रूप देखने को मिलता है।

'प्रथम भेंट–अंतिम' भेंट महादेवी वर्मा का लोकप्रिय रेखाचित्र है। इसका प्रकाशन 'बिट्टो' शीर्षक से हुआ है। बिट्टो इस कृति की नायिका है। इसके सार एवं समीक्षात्मक अवलोकन से पूर्व महादेवी वर्मा से अवगत हो लेना समीचीन होगा।

5.3.1 महादेवी वर्मा : एक परिचय

महादेवी वर्मा सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से एक और हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के प्रमुख स्तंभों– जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत के

साथ अहम स्तंभ मानी जाती हैं। इनका जन्म 26 मार्च, 1907 को फर्रूखाबाद, उत्तर प्रदेश के एक संपन्न परिवार में हुआ। हेमरानी देवी और बाबू गोबिंद प्रसाद वर्मा इनके माता–पिता थे। मात्र 9 वर्ष की उम्र में 1916 में इनका विवाह नवाबगंज, बरेली के स्वरूप नारायण वर्मा से कर दिया गया। वे पति–पत्नी के संबंध को स्वीकार नहीं कर सकी। कारण आज भी रहस्य बना हुआ है।

महादेवी वर्मा की आरंभिक शिक्षा मिशन स्कूल इंदौर में हुई। आप 1929 में बौद्ध दीक्षा लेकर भिक्षुणी बनना चाहती थी, लेकिन महात्मा गांधी के संपर्क में आने के बाद समाज–सेवा में लग गईं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1932 में संस्कृत साहित्य से एम.ए. करने के बाद आपने नारी शिक्षा के प्रयोजन से प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की और यहां बतौर प्रधानाचार्या कार्यरत रहीं। महादेवी वर्मा ने मासिक पत्रिका 'चांद' का अवैतनिक संपादन भी किया।

वर्ष 1955 में इन्होंने इलाहाबाद में 'साहित्यकार संसद' नामक संस्था स्थापित की और पं. इलाचंद्र जोशी के सहयोग से इसके मुखपत्र 'साहित्यकार' का संपादन किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गई थी। इलाहाबाद में ही 11 सितंबर, 1987 को इनका देहांत हो गया।

कृतियां एवं सम्मान– महादेवी वर्मा कवयित्री होने के साथ–साथ ही एक विशिष्ट गद्यकार भी थीं। इनकी कृतियां निम्नांकित हैं–

- **काव्य–** नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, यामा, सप्तपर्णा।
- **गद्य–** अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं, पथ के साथी, मेरा परिवार।
- **निबंध–** शृंखला की कड़ियां, विवेचनात्मक गद्य, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, क्षणदा (ललित निबंध)।
- **विविध–** स्मारिका, स्मृति चित्र, संभाषण, संचयन, दृष्टि बोध।

महादेवी को 'नीरजा' के लिए 1934 में 'सेकसरिया पुरस्कार' एवं 'स्मृति की रेखाएं' के लिए 1942 में द्विवेदी पदक से सम्मानित किया गया। इन्हें 1943 में 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' एवं उत्तर प्रदेश सरकार के 'भारत भारती पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिए 1956 में उन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि दी और 1969 में विक्रमशिला विश्वविद्यालय ने डी.लिट. की उपाधि से अलंकृत किया। 'यामा' काव्य संकलन के लिए महादेवी वर्मा को 1982 में भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

5.3.2 प्रथम भेंट–अंतिम भेंट : मूल पाठ

कुलमणि मल्लीताल के बाजार से तब तक लौट नहीं पाया था; पर झील के किनारे पड़ी हुई उस शिला पर बैठे–बैठे मेरा मन ऊबने लगा और पतियों से झालरदार शाखाओं की पानी में झूलती हुई छाया के साथ प्राणायाम करते–करते मेरी दृष्टि थक चली। सहसा 'अरे यह तो महादेवी है', सुनकर जब मैंने पार्श्ववर्ती मार्ग की ओर मुँह फेरा, तो सैंडल की दो पतली ऊंची एड़ियों पर अपने कुछ स्थूल शरीर का संतुलन–सा करती हुई मेरी एक पुरानी साथिन, विचित्र व्यायाम की मुद्रा में खड़ी दिखाई पड़ीं।

पर्वतीय भूमि मेरी धात्री से मां बन गई है। पैदल ही कई सौ मीलों की यात्रा कर मैंने उसकी प्रशान्त सुषमा और प्रमुख जीवन को अनेक रूपों में देखा है, परंतु उस निस्तब्ध सौन्दर्य और नगर के कोलाहल में मैं अब तक कोई समझौता न करा सकी। अपनी धूल भरी धरती का अंक छोड़ करके मुझसे उन्हीं तुषारधौत चरणों में विश्राम मिलता है, जिन्होंने साधना के धूल के विशाल दुर्ग बनाकर अपनी करुणा को हमारे लिए सुरक्षित रखा है।

यहां के बवंडर की गठरी बांध ले जाकर उसे वहां खोल देना मुझे कभी नहीं भाया, इसी से नैनीताल, मसूरी आदि मेरे निकट उस अपटु नट जैसे रहे हैं, जो अपना व्यक्तित्व भी खो देते हैं और दूसरे की भूमिका भी नहीं निभा पाते।

—मेरे ज्वर से चिंतित होकर डॉक्टरों ने जब कुछ महीने पहाड़ पर रहने की सम्मति दी, तब मैंने बहुत हठ करके नैनीताल के कोलाहल से तीन मील दूर ताकुला में रहने की अनुमति प्राप्त कर ली; पर सप्ताह में एक बार डॉक्टर से परामर्श लेने जाना ही पड़ता था और नौकर जब तक आवश्यक वस्तुएं खरीदता तब तक झील के बायीं ओर वाले कुछ सुनसान किनारे पर ठहर कर उसकी प्रतीक्षा करनी ही पड़ती थी।

पर उस दिन अपनी बाल्यसखी को पाकर मुझे सचमुच आनन्द हुआ। वह अपने दो छोटे बच्चों के साथ ऊपर जिस बंगले में ठहरी थी, वहां तक न जाने का कोई बहाना खोजने की इच्छा ही नहीं हुई।

जीवन का बहुत समय पार कर जब दो साथी मिलते हैं, तब वे कितने ही प्रकार से बीते क्षणों में एक बार फिर जीने का प्रयास करते हैं, इसे कौन नहीं जानता। हम दोनों ने भी अपने जीवन के चित्राधारों को एक—दूसरे के सामने रख अपने अनुभवों को मिलाने में कुछ समय बिताया ही।

अतीत की फीकी स्मृति में रंग भरते—भरते सखी ने एक परिचित वृद्ध सज्जन के संबंध में बताया कि वे अपनी तीसरी नवोढ़ा पत्नी को नैनीताल दिखाने लाये हैं। मेरी आंखों का विस्मय अपनी गुरुता के कारण ही शब्दों में न उतर सका। वृद्ध जीवन के कम—से—कम 54 बसंत और पतझड़ देख चुके होंगे— दो अर्धांगिनियां मानो उनके जीवन की द्रुत गति से पग न मिला सकने के कारण ही उनका संग छोड़ गयी हैं। उनसे मिले उपहार स्वरूप दो पुत्रों में से एक कलकत्ते में कोई व्यवसाय करता है और दूसरा ससुराल की धरोहर बन गया है। दो मकान और कुछ धन है, इसी से वानप्रस्थ आश्रम को भी कुछ सरस बनाए रखने के लिए वृद्ध महोदय को एक संगिनी ढूंढने की आवश्यकता जान पड़ी।

मेरी नीरव जिज्ञासा से प्रभावित होकर सखी कुछ स्निग्ध कंठ से बोली— "तुम न डरो। इस बार उन्होंने एक पैंतीस वर्ष की बाल—विधवा का उद्धार किया है।"

—मेरे 'असंभव' में जितना अविश्वास था, उतना ही व्यंग्य ओठों में भर कर वे मुस्कराने लगीं। कुछ वाद—विवाद के बाद यह निश्चित हुआ है कि वे लौटते समय उससे मेरा परिचय करा देंगी।

मल्लीताल में एक दुकान ऊपर दो कमरे लेकर वृद्ध सपत्नीक ठहरे थे। जीने के द्वार खटखटाने पर जिस स्त्री ने वृद्ध महोदय की अनुपस्थिति की सूचना देकर बड़े विनीत भाव से हमारी अभ्यर्थना की, वह मुझे बहुत दुर्बल, कृश और रोगिणी—जैसी जान पड़ी। एक सोने

की नयी जंजीर उसकी दुबली, सूखी, उभरी हड्डियों से सीमित और झुर्रियोंदार रक्तहीन चर्म से मढ़ी गर्दन का उपहास कर रही थी। कुछ पुरानी गढ़न के इयरिंग झाईंदार सूखे और चिपके कपोलों पर व्यंग्य–से लगते थे। आंखें बड़ी थीं; पर उसके सूखे मुख और रुखी पलकों में ऐसी जान पड़ती थीं मानो ऊपर से रख दी गई हों और पलक मारते ही निकल पड़ेंगी। नीचे के दो दांत कदाचित् गिरने से टूट गए थे, क्योंकि एक पूरा अदृश्य था और दूसरा आधा दिखाई दे रहा था।

पैंतीस वर्ष का दीर्घ वैधव्य पार कर, चिता में बैठे हुए वृद्ध वर के लिए पुनः स्वयंवरा बनने वाली वह दुर्बल और थकी हुई–सी स्त्री मेरे लिए एक साकार विस्मय बन गयी। टसर की मटमैली साड़ी में लिपटी उस संकुचित मूर्ति में न रूप था, न स्वास्थ्य, न कोई उमंग शेष थी, न उल्लास।

फिर क्या लेकर वह नयी गृहस्थी बसाने चली है, यह प्रश्न अनेक रूप–रूपांतरों के साथ मेरे मन को घेरने लगा।

यह प्रथम भेंट यदि अंतिम भेंट हो जाती तो आज कहने के लिए कुछ न रहता; पर सीढ़ियों से उतरते ही रूमाल में खूबानी बांध कर लौटे हुए वृद्ध सज्जन से भेंट हो गयी। एक–एक सांस में अनेक–अनेक निमन्त्रण दे उन्होंने अपनी नवागता पत्नी से परिचय बढ़ाने पर बाध्य किया और इस प्रकार मैं उस विचित्र सौभाग्यवती के फूटे भाग्य से परिचित हो सकी।

वह तीन भाइयों में अकेली बहन होने के कारण विशेष दुलार में पल कर बड़ी हुई। विवाह उसके अबोधपन में ही हो गया और वैधव्य भी अनजाने आ पड़ा। न पहली स्थिति ने उसे उल्लास में बहाया था; न दूसरी स्थिति उसे निराशा में डूबा पायी। विवाह के साल ही पुत्र की मृत्यु हो जाने के कारण ससुराल वाले वधू का नाम लेना भी अशुभ मानने लगे और दुःखी माता–पिता ने भी नवनीत की पुतली के समान संभाल कर पाली हुई कन्या को उस ज्वाला में झोंकना उचित न समझा। दुर्दैव के इस आघात को कुछ सह्य बनाने के लिए माता–पिता ने अपना समस्त स्नेह उंड़ेलकर उसे किसी अभाव का बोध ही नहीं होने दिया, इससे अभिशप्त, पर शान्त अनजान, किसी परी–देश की राजकन्या के समान वह अपने–आप में पूर्ण रहने लगी।

फिर माता जब परलोक सिधारीं, तब भी पिता के कारण उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन न आने पाया। परंतु पिता के आंख मूंदते ही मानो संसार की सब वस्तुओं का मूल्य ही बदल गया। उस एक मात्र ढाल के नष्ट होते ही उस पर ऐसे असंख्य प्रहारों की वर्षा होने लगी, जिनकी उपस्थिति का ज्ञान न होने के कारण ही बचाव के साधन भी ज्ञात न थे। अब तक पति उसके निकट ऐसा था जैसे ईश्वर, जो हमारी इन्द्रियों से परे रहकर भी हमारे हृदय की अचल श्रद्धा और अडिग विश्वास का आधार बना रहता है। भावुक उपासक के समान उसने बिना तर्क किए ही सुखमय साधना से अपने जीवन को घेर लिया था।

जब पहले–पहले भाभियों ने पति की मृत्यु का दोषी उसी को ठहराया और पड़ोसिनों ने उसके किसी अज्ञात अभाव को लक्ष्य कर व्यंग्य–वर्षा की, तब उसका हृदय

पीड़ा की अनुभूति के साथ वैसे ही चौंक पड़ा, जैसे सोता हुआ व्यक्ति अंगार के सपर्श से जाग जाता है।

फिर तब से उसके लिए नित्य नवीन मानसिक और शारीरिक यातनाओं का आविष्कार होने लगा। घर के नौकर–चाकर कम किए गए; पहले संकेत में, फिर स्पष्ट रूप से और अंत में आज्ञा के स्वर में उससे सब काम संभालने के लिए कहा जाने लगा। अभ्यास से उत्पन्न भूलों के लिए भाभियों के द्वारा कुछ विशेष पूजा भी मिलने लगी। उस पर किसी दिन उसका मन हाथों पर लिए रहने वाली भाभियां कहती थीं कि उसके भाई सतयुग के हैं, नहीं तो कौन निठल्ले व्यक्ति को बैठे–बैठे खिला सकता है। यह स्वर तो उसके लिए एकदम नया था। वह समझ ही न पाती कि जिस घर में उसका जन्म और पालन हुआ है, उसी में यदि रात–दिन काम करके अपने सहोदरों से उसे भोजन वस्त्र मिल जाता है, तो उसे कृतज्ञता के समुद्र में क्यों डूब जाना चाहिए। अकेले बड़े भाई ही नौकर थे, शेष दोनों जमीन–जायदाद की देख–रेख में लगे रहते जो उसके भी पिता की थी।

धीरे–धीरे वैसे विषाक्त वातावरण में उसका शरीर शिथिल हो चला और मन टूट गया। ज्वर रहने लगा, बेहोशी के दौरे आने लगे। किसी ने कहा– क्षय का पूर्ण लक्षण है; किसी ने बताया–मृगी रोग है। रोग तो दोनों संक्रामक थे; अतः बेचारी भाभियां अपने कुटुम्ब की कल्याण–कामना से आकुल होने लगीं। परामर्श करके छोटे भाई द्वारा उसके देवर को पत्र लिखवाया गया; परंतु वहां से उत्तर आया कि लोग उसे पहचानते ही नहीं– जान पड़ता है किसी अनाचार के कारण वे उसे उन निर्दोषों के गले मढ़ना चाहते हैं; यदि वे ऐसा करेंगे तो न्यायालय तो कहीं भाग नहीं गए हैं।

निरुपाय होकर बड़ी भाभी ने स्नेहस्निग्ध कंठ से अपने पति महोदय से कहा– "अब तो विधवा–विवाह होने लगे हैं। बेचारी बिट्टो का विवाह कर दिया जाय तो कैसा हो!" जिज्ञासु भाई ने जब बहन की इच्छा के संबंध में प्रश्न किया; तब भाभी ने ममताभरी वाणी में उनकी ना–समझी की टीका करते हुए बताया कि ऐसी इच्छा तो कोई निर्लज्ज लड़की भी नहीं प्रकट करती, बिट्टो लज्जा–साकार है; परंतु विवाह न होने पर उसका घुट–घुट कर मर जाना निश्चित है।

जिस समाज में 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है वहां 32 वर्ष की बिट्टो के पुनर्विववाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खीर थी। उसके भाग्य से ही 150 वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म–जन्मान्तर के अखंड पुण्य फल से हमारे 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।

जब भाभी ने उसे यह सुखद समाचार सुनाया, तब पहले तो यह सत्य उसकी बड़ी–बड़ी शून्य आंखों की दृष्टि को भेदकर हृदय तक पहुंच ही नहीं सका और जब अनेक प्रयत्न करने पर पहुंचा, तो उसका परिणाम विपरीत ही हुआ। बिट्टो ने बहुत करुण–क्रंदन के साथ विवाह का विरोध किया; पर परोपकारियों का मार्ग न समुद्र रोक सकता है और न पर्वत।

किसी ने उसे भाई–भतीजों की कल्याण–कामना की आवश्यकता बतायी, किसी ने रोग की संक्रामकता की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया और किसी ने उसके जर्जर शरीर

की अनुपयोगिता सिद्ध की। संभवतः वृद्ध वर को मृत्यु के निकट जानकर ही किसी ने उसके कल्याण की चिंता नहीं की। अंत में एक शुभ मुहूर्त में जलती हुई, पर सूखी आंखों से बिट्टो ने पितृगृह की देहली को अंतिम प्रणाम करके धीर पदों से उस कई बार बसे–उजड़े घर में प्रवेश किया, जहां उसके आगमन से अपना असहयोग प्रदर्शित करने के लिए एक प्राणी भी स्वागतार्थ उपस्थित न था।

यही उपसंहारणीय करुण कथा बिट्टो ने मुझे अनेक भेटों में खंड–खंड करके सुनायी। उसकी व्यथा अपनी गंभीरता के कारण ही दुर्बोध बन गयी थी। हमारे यहां का पुरुष उसे ठीक रूप में किस अंश तक समझ सकेगा, यह कहना कठिन है। पुरुष बेचारे की उग्र तपस्या और अखंड साधना प्रायः स्त्री के द्वारा भंग होती है, इसी से उसने इस मायाविनी जाति के स्वभाव की व्याख्या करने के लिए पोथे रच डाले हैं।

स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है, तब पुरुष उसके लिए न महत्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण; इस सत्य को सत्य मान लेना पुरुष के लिए कभी संभव नहीं हो सका। अपनी पराजय को बलात् जय का नाम देने के लिए ही संभवतः वह अनेक विषम परिस्थितियों और संकीर्ण सामाजिक, धार्मिक बंधनों में उसे बांधने का प्रयास करता रहता है। साधारण रूप से वैभव के साधन नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के संपूर्ण जीवन से भारी ठहरता है। फिर भी स्त्री को हारा हुआ मेरा मन कैसे स्वीकार करे, जब तक उसके परिस्थितियों से चूर–चूर हृदय में भी आलोक की लौ जल रही है।

महीयसी बिट्टो को तो एक दिन बस में बैठाकर विदा ही करनी पड़ी पर उसकी कहानी मेरी हृदय के कोने में बस सी गयी। इसी से कभी–कभी उन्हीं सखी महोदय को लिख कर उसके संबंध में पूछना ही पड़ जाता है।

आज प्रायः चार वर्ष के बाद उसके संबंध में एक साधारण समाचार मिला है। सखी ने लिखा है कि वृद्ध विषम ज्वर से पीड़ित होकर अंतिम घड़ियां गिन रहे हैं। बहुएं तो नहीं; पर दोनों पुत्रों ने आकर मकान, रुपया आदि अपनी धरोहर संभालने का पुण्य अनुष्ठान आरंभ कर दिया है। सुपुत्रों को यह तीसरी विमाता फूटीं आंख नहीं सुहाती, अतः बेचारी बिट्टो का भविष्य पहले से अधिक अंधकारमय है।

मन में आ रहा है कि मन्दबुद्धि सखी को एक लंबा–चौड़ा व्याख्यान लिख डालूं। मनु महाराज जो कह गए हैं, उसे असत्य प्रमाणित कर कुम्भीपाक में विहार करने की इच्छा न हो, तो यह कहना ही पड़ेगा कि बिट्टो तीसरे विवाह की इच्छा को हृदय के किसी कोने में छिपाए हुए है और उसके उद्धार के लिए निरंतर कटिबद्ध वृद्ध परोपकारियों की इस पुण्यभूमि में और विशेषकर इस जाग्रत युग में कमी नहीं हो सकती।

फिर इतने विलाप–कलाप की क्या आवश्यकता है?

5.3.3 प्रथम भेंट–अंतिम भेंट का सार

यह रेखाचित्र नारी विमर्श पर आधारित है। बिट्टो इस कृति की नायिका है, जो बाल विवाह की भेंट चढ़ने के एक वर्ष बाद विधवा हो गई है। ससुराल वालों से बहिष्कृत किए जाने के बाद वह मायके में रहती है। माता–पिता उसके मान–सम्मान, सुख–सुविधा में कोई कमी

नहीं छोड़ते। उसे कभी किसी अभाव या अपने दुर्भाग्य जैसी किसी स्थिति का आभास तक नहीं हो पाता। भाई–भाभियां भी उसकी खिदमत में हाजिर मिलते हैं। वह तीन भाइयों की इकलौती बहन है।

माता–पिता के दिवंगत होने के बाद भाई–भाभियों का रुख उसके प्रति बदल जाता है। वह तमाम यंत्रणा व संत्रास के बीच नौकरानी बनकर रह जाती है। शरीर सूख–सा जाता है और फिर रोगिणी भी बन जाती है। ज्वर–ग्रस्त रहने लगने पर कोई उसे दमा की गिरफ्त में आया बताता है और कोई क्षय रोग की। उससे पीछा छुड़ाने के लिए उसके पुनर्विवाह की कोशिशें होती हैं। एक दिन 32 वर्षीय नायिका 'बिट्टो' का विवाह एक 54 वर्षीय सज्जन से होता है, जिसकी दो पत्नियां पहले भी रह चुकी है।

लेखिका को बिट्टो के बारे में तब पता चलता है, जब वह आरोग्य–लाभ के लिए नैनीताल प्रवास पर गई होती है। आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए एक नौकर कुलमणि बाजार गया हुआ होता है। महादेवी वर्मा उसकी प्रतीक्षा में नैनीताल के ताकुला स्थित एक झील के किनारे बैठी हुई होती हैं। इस दौरान वहां उनकी एक बाल्य सखी उपस्थित होती है। वार्तालाप के क्रम में वही उनसे कहती है कि उसके परिचित एक वृद्ध पुरुष अपनी तीसरी नवोढ़ा पत्नी को नैनीताल घुमाने लाए हैं। लेखिका उनसे मिलने जाती है। दरवाजा खटखटाने पर बिट्टो मिलती है; उसके पति किसी काम से बाहर गए होते हैं। महादेवी वर्मा वापस लौटती हैं, किंतु यह प्रथम भेंट, अंतिम भेंट नहीं बन पाती। घर की सीढ़ियों से नीचे उतरते ही, वापस लौटे बिट्टो के पति महोदय मिल जाते हैं और वे हठ करके लेखिका व उसकी सहेली को पुनः बिट्टो के पास ले जाते हैं। लेखिका के अनुसार, "एक–एक सांस में अनेक–अनेक निमंत्रण दे उन्होंने अपनी नवागता पत्नी से परिचय बढ़ाने पर बाध्य किया और इस प्रकार मैं उस विचित्र सौभाग्यशाली के फूटे भाग्य से परिचित हो सकी।"

महादेवी वर्मा वहां से लौटने के बाद आगे भी अपनी सहेली को पत्र लिखकर उसकी कुशल–क्षेम पूछती रही। चार वर्ष के बाद उन्हें पता चला कि बिट्टो के ये पति भी चल बसे। उनके दोनों पुत्रों ने आकर उनकी चल–अचल संपत्ति संभाल लिया और विमाता बिट्टो उन्हें फूटी आंख भी न सुहाई। उसका भविष्य पहले से अधिक अंधकारमय हो गया।

5.3.4 प्रथम भेंट–अंतिम भेंट : समीक्षात्मक अवलोकन

आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली महादेवी वर्मा का सृजन वेदना का सृजन है। लेखन का आरंभ मूलतः उन्होंने नारी जीवन की दयनीयता, विवशता एवं पीड़ा से क्षुब्ध होकर आक्रोश व्यक्त करते हुए किया था। छायावाद के आधार–स्तंभों में से एक महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियां' लिखकर प्रथम बार छायावादी परिधि का अतिक्रमण करते हुए नारी जीवन की बेड़ियों को तोड़ने का आह्वान किया था। यहीं से उनके विद्रोह मूलक विचार–भूमि का सूत्रपात हुआ।

धीरे–धीरे महादेवी वर्मा के विचार संयत, संस्कृत, प्रौढ़ और अनुभूति–दीप्त होते गए। उन्होंने 'क्षणदा', 'संकल्पिता', 'भारतीय संस्कृति के स्वर' आदि गद्य संग्रहों में साहित्य, संस्कृति, राष्ट्रभाषा, जीने की कला, भारतीय नारी आदि पर अपने सुचिंतित व सारगर्भित विचारों को आकार दिया है। महादेवी वर्मा के शब्दों में– "विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय

अपने आप में सब शंकाओं का समाधान है। यदि आज हम इन दो विशेषताओं को सुलभ करने की साधना में लग जाएं तो अन्य समस्याएं स्वयं सुलझ जाएंगी।"

रेखाचित्र एक तरह से कथात्मक शैली में लिखे गए निबंध ही होते हैं। महादेवी वर्मा के निबंधों में युगीन भाव–विचार की संपदा का वैभव तो है ही, साथ ही वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक की भारतीय संस्कृति में प्रवाहित आस्था–विवेक व मानवीय राग–चेतना का नैरन्तर्य भी है। युग–जीवन की समस्याओं का समाधान उन्होंने इसी सांस्कृतिक मनोभूमि पर ढूंढने की कोशिश की है। अपूर्व सांस्कृतिक वैभव उनके गद्य की सर्व प्रमुख विशिष्टता है जिसमें करुणा की आर्द्रता, संवेदना का विस्तार एवं विधेय का अनुशासन आद्योपान्त लक्षित होता है। यही कारण है कि उनका विद्रोही स्वर भी क्षणिक विस्फोट न साबित होकर, विवेक गर्भित संतुलन में बदल गया है।

घर और समाज दोनों ही स्थलों पर स्त्री की हालात करुण है। न उसे मायके में स्नेह और अधिकार मिलते हैं न ससुराल में। स्त्री की गुणहीन या सर्वगुण संपन्न होना दोनों ही स्थितियां पुरुष को स्वीकार्य नहीं हैं। यदि वह अति आकर्षक है तो पुरुष उसे रंगीन खिलौने की तरह समझेगा और यदि कुरूप है तो उपेक्षा की वस्तु बन जाएगी– दोनों ही स्थितियां अपमानजनक है। स्त्री अगर सीधी सादी है तो उसे इस दोष के कारण और यदि पति से इक्कीस है तो दोषों के अभाव के कारण पति की अप्रसन्नता झेलनी ही पड़ती है। उसकी किसी क्यों का उत्तर देने के लिए न पति बाध्य है, न समाज बाध्य है, न धर्म बाध्य है।

विधवा होने की दशा में नारी न घर की होती है, न घाट की। बाल विधवा हुई 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' की नायिका बिट्टो के बारे में लेखिका के शब्द हैं– "जिस समाज में 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है वहां 32 वर्ष की बिट्टो के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खीर थी। उसके भाग्य से ही 150 वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म–जन्मान्तर के अखंड पुण्य फल से हमारे 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।"

महादेवी वर्मा ने स्त्री के अर्थ–स्वातंत्र्य के प्रश्न पर भी विचार किया है। आर्थिक स्तर पर भारतीय स्त्री नितांत रंक एवं परतंत्र रही है। उसे कभी भी सहयोगिनी नहीं माना गया। किसी भी स्मृतिकार या शास्त्रकार ने उसकी आर्थिक समस्या पर विचार नहीं किया। इस देश में नारी को देवत्व देकर उसे पूजा की वस्तु बना दिया गया। उसके मौन जड़ देवत्व में ही पुरुष अपना कल्याण समझने लगा। उसके चारों ओर संस्कारों का क्रूर पहरा बिठा दिया गया। उसकी निश्चेष्टता को भी उसके सहयोग और संतोष का सूचक माना गया।

'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' की नायिका जब दोबारा विधवा बन जाती है तब उसकी स्थिति क्या होती है? महादेवी वर्मा के शब्दों में– "आज प्रायः चार वर्ष के बाद उसके संबंध में एक साधारण समाचार मिला है। सखी ने लिखा है कि वृद्ध विषम ज्वर से पीड़ित होकर अंतिम घड़ियां गिन रहे हैं। बहुएं तो नहीं; पर दोनों पुत्रों ने आकर मकान, रुपया आदि अपनी धरोहर संभालने का पुण्य अनुष्ठान आरंभ कर दिया है। सुपुत्रों को यह तीसरी विमाता फूटी आंख नहीं सुहाती, अतः बेचारी बिट्टो का भविष्य पहले से अधिक अंधकारमय है।"

महादेवी के साहित्य में वे ही रचनाएं रेखाचित्र हैं जो ऐसे लोगों को पात्र बनाकर लिखी गई हैं, जो समाज के हाशिए पर दबे–कुचले, मगर महादेवी के जीवन तथा आत्मा के अत्यंत निकट रहते हैं। दूसरी ओर, संसार में विख्यात व्यक्तियों के संबंध में उन्होंने जो लिखा है, वह संस्मरण की श्रेणी में आता है। रेखाचित्र में ज्यादा आत्मीयता का होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर, संस्मरण में कभी–कभी शिष्टाचार भी दिखाई देता है। इस विशेषता के कारण रेखाचित्र अधिक रचनात्मक है और उसमें रचनाकार की आत्म–अभिव्यक्ति की अधिक संभावना रहती है। इसलिए रेखाचित्र में प्रकट होने वाली उनकी विश्वदृष्टि अधिक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय है। उनके रेखाचित्र के पात्रों के शब्दचित्रों में असाधारण सजीवता मिली है और उनके शब्दचित्र असाधारण रूप से स्मरणीय बन जाते हैं। भाव–स्मृति से उभरती हुई रूप–स्मृति, सजग–असजग दोनों प्रकार से प्रकट हो गई है।

महादेवी के जीवन के निकट इसलिए इतनी दुःख–कथाएं हैं कि एक ओर तो वे स्वयं उस समाज से घनिष्ठ संबंध रखने में सक्रिय रहती हैं, जहां जीवन दुःख, अन्याय, उपेक्षा, पीड़ा, अपमान, आदि से भरा हुआ है, दूसरी ओर, उनके व्यवहार को देखकर असहाय लोग उनसे सहायता मिलने की आशा में उनके पास आ जाते हैं। इस प्रकार महादेवी दुःख के समीप स्वयं जाती भी हैं और दुःख महादेवी की तरफ आता भी है। महादेवी के दैनिक जीवन में अनुभव की वास्तविकता के कारण ही उनके रेखाचित्र अत्यंत प्रभावशाली बन जाते हैं। कहानी के सभी पात्र अपनी सारी सजीवता के साथ जीवन के पथ पर चलते दिखाई देते हैं। कुछ पात्रों के साथ तो ऐसी घटनाएं घटित होती हैं, जो हमारे दैनिक जीवन के एकदम समीप पड़ती हैं। वास्तविक समाज के निम्न तथा उपेक्षित व्यक्तियों को लेकर उन्होंने जीवन की घनीभूत मार्मिक वेदना को जिस प्रकार स्पर्श किया है, वह अभूतपूर्व है।

उनका रेखाचित्र जीवन के यथार्थ को स्पर्श करता हुआ आगे बढ़ता है। उसमें कल्पना की मात्रा कम है, पर अनुभूतियों का आधिक्य है और समाज की स्वार्थपरता पर आक्रोश भी है। उनके अपनेपन से भरे हुए कोमल, मधुर और मर्मस्पर्शी रचनात्मक गद्य में करुणा, विनोद और व्यंग्य का अद्‌भुत समन्वय संभव हुआ है, इसलिए वह महादेवी की मार्मिक भावभूमि का सुंदर परिचय देने में समर्थ हो गया है। महादेवी इन रेखाचित्रों के माध्यम से मूक जनता के पीड़ित जीवन को स्वर देती हैं। उनकी गद्य रचना एक विद्रोही की आत्मा का क्रंदन है, उसमें महादेवी के दुःख का मूल अपनी पीड़ा में नहीं, वरन् समाज में दिन–रात चलने वाले अन्यायों और अत्याचारों में ही है।

'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' की नायिका के दोबारा विधवा होने की सूचना जब महादेवी वर्मा को अपनी सहेली से मिलती है तब वे अपनी आक्रोशपूर्ण पीड़ा इस प्रकार व्यक्त करती हैं– "मन में आ रहा है कि मन्दबुद्धि सखी को एक लंबा–चौड़ा व्याख्यान लिख डालूं। मनु महाराज जो कह गए हैं, उसे असत्य प्रमाणित कर कुम्भीपाक में विहार करने की इच्छा न हो, तो यह कहना ही पड़ेगा कि बिट्टो तीसरे विवाह की इच्छा को हृदय के किसी कोने में छिपाए हुए है और उसके उद्धार के लिए निरंतर कटिबद्ध वृद्ध परोपकारियों की इस पुण्यभूमि में और विशेषकर इस जाग्रत युग में कमी नहीं हो सकती।"

महादेवी वर्मा के सृजन में शिल्पगत सौंदर्य की बात करें तो भाषा पर उनका अप्रतिम अधिकार है। विषय–विश्लेषण में तर्कशील व सामान्य बात करते हुए सरल, सहज व बोधगम्य भाषा का प्रयोग उन्होंने किया है जो सर्वथा विषयानुकूल है। शब्द चयन बहुत सुंदर बन पड़ा है। बिम्बात्मक चित्र उनकी कल्पना शक्ति के परिचायक हैं। उनमें विदेशी भाषा के शब्द बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत का मिश्रण सर्वत्र मिलता है। तत्सम शब्दावली की बहुलता है। लोक शब्दावली के कुशल प्रयोग ने इनके चित्रण को सजीव और अर्थगर्भित बना दिया है। मुहावरे, लोकोक्तियों और कहावतों के प्रयोग ने भाषा को लाक्षणिकता प्रदान की है। उनके गद्य की भाषा अनेक स्थलों पर काव्यमयी हो गई है। संश्लिष्ट चित्रों के अंकन में चित्रात्मकता मिलती है। विवेचन और प्रसाद शैली को प्रमुखता मिली है।

उनकी रचनाओं में यत्र–तत्र गंभीर एवं शिष्ट व्यंग्य भी देखने को मिलते हैं। उनके अधिकांश निबंध भावात्मक हैं, जिनमें धारा शैली दर्शनीय है। महादेवी जी ने वेदों, उपनिषदों तथा अन्य काव्य–ग्रंथों से अनेक उद्धरण दिए हैं और उनके द्वारा अपनी धारणाओं को पुष्टि प्रदान की है। लोकगीतों के मुखड़े भाषा में यत्र–तत्र प्रयुक्त हुए हैं। विचारों और भावुकता के सम्मिश्रण से भाषा में रमणीयता आ गई है। इनमें उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अलंकारों की छटा भी दर्शनीय रही है। इस प्रकार अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता इनमें निर्विवाद रूप से मिलती है।

'महादेवी वर्मा : काव्य–कला और जीवन दर्शन' में अमृतराय कहते हैं– "महादेवी स्त्री की परवशता के मूल कारण को उसकी आर्थिक अधिकारहीनता मानती हैं, नारी की इस परवशता का मूल कारण क्या है, यह पता लगाने में उन्हें ज्यादा देर न लगी। उनका यह निश्चित मत है कि स्त्रियों की इस परवशता के मूल में उनकी आर्थिक परवशता है और इसीलिए उनकी परवशता का उच्छेद तब तक असंभव है जब तक स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबी नहीं हो जाती।" वास्तव में यहां भी स्त्री की सामाजिक समस्या को सरल तथा संक्षिप्त रूप से स्पष्ट किया गया है। वे महादेवी की उस विचारधारा को लेनिन की मान्यता के साथ जोड़कर उनको समाजवाद से प्रभावित सिद्ध करते हैं। "स्पष्ट है कि नारी–स्वाधीनता के प्रश्न पर महादेवी के विचार विज्ञान–सम्मत रूप में समाजवाद से प्रभावित हैं।

कतिपय आलोचक दुःखवाद को महादेवी वर्मा के साहित्य का वैशिष्ट्य मानते हैं। दुःख के कई रूप होते हैं, लिहाजा इस संदर्भ में यह देखना चाहिए कि आलोचक महादेवी के साहित्य को किस प्रकार के दुःख से संबद्ध करते हैं और स्वयं महादेवी की दृष्टि में कैसे दुःख की सार्थकता है। इस संदर्भ में महादेवी का 'क्षणदा' (पृष्ठ 13–14) में कहना है– "उन (बुद्ध) के निकट चार आय सत्य हैं। दुःख, दुःख–समुदाय (कारण), दुःख–निरोध और दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा। यह दुःख न किसी आध्यात्मिक जगत् का दुःख है और न सूक्ष्म दार्शनिक जगत् के असंतोष का पर्याय है, प्रत्युत प्रत्यक्ष जीवन का दुःख है।"

महादेवी के साहित्य को दुःखवाद से जोड़ना है तो उस 'दुःख' का आशय भी मूलतः प्रत्युय प्रत्यक्ष जीवन का दुःख ही होगा; क्योंकि– 'सत्य काव्य का साध्य है' : कहने वाली महादेवी के लिए सत्य शब्द का अमूल्य स्थान है और उपर्युक्त कथन का दुःख सत्य के अति निकट स्थित है।

Institute of Distance Education
Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in